अथ दशमं काण्डम्

नवम काण्ड के अन्तिम सूक्त का ऋषि ब्रह्मा है। यह उत्तम श्रेणी में सर्वप्रथम स्थान में स्थित है। यह सब प्रकार की हिंसाओं को समाप्त करता हुआ प्रत्येक अङ्ग में रसवाला 'प्रत्यङ्गिरस' बनता है। यही दशम काण्ड के प्रथम सूक्त का ऋषि है। इस सूक्त का विषय कृत्या-दूषण है—हिंसा का दूषण—हिंसा को समाप्त करना—

अथ द्वाविंशः प्रपाठकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥

'विश्वरूपा-हस्तकृता' कृत्या

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप नुदाम एनाम्॥ १॥

१. **चिकित्सवः**=(चिकिति to know) समझदार निर्माता लोग **याम्**=जिस **विश्वरूपाम्**=अनेक रूपोंवाली **हस्तकृताम्**=हाथ से बनाई गई कृत्या को—हिंसा प्रयोग को (Bomb इत्यादि के रूप में) **कल्पयन्ति**=बनाते हैं, **वहतौ वधूम् इव**=विवाहकाल में विभूषित वधू की भाँति सुन्दर बनाते हैं। **सा**=वह कृत्या **आरात् एतु**=हमसे दूर हो, **एनाम् अपनुदामः**=हम इसे अपने से दूर करते हैं।

भावार्थ—चतुर शत्रुवर्ग हमारे विनाश के लिए जिन वधू के समान सजे हुए कृत्या-प्रयोगों को करते हैं—विचित्र, सुन्दर आकृतिवाले बम्ब इत्यादि बनाते हैं, ये भिन्न-भिन्न रूपोंवाले आकर्षक, क्रीड़नकों के समान होते हैं। हम इन्हें अपने से दूर करें। इनका शिकार न हो जाएँ।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराण्नामगायत्री** ॥

'शीर्षण्वती, नस्वती' कृत्या

शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप नुदाम एनाम्॥ २॥

१. **कृत्याकृता**=विनाशकारिणी मूर्त्ति (बम्ब आदि) बनानेवाले पुरुष से **संभृता**=बनाई गई **विश्वरूपा**=नाना रूपोंवाली **शीर्षण्वती**=सिरवाली, **नस्वती**=नाकवाली, **कर्णिनी**=कानवाली **सा**=वह कृत्या **आरात् एतु**=दूर हो। **एनाम् अपनुदामः**=हम इसे अपने से दूर करते हैं।

भावार्थ—सिर, कान, नाकवाली, विविध रूपोंवाली कृत्या को हम अपने से दूर करते हैं।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

जाया पत्या नुत्ता इव

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता। जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु॥ ३॥

१. **शूद्रकृता**=श्रमिकों से की गई, **राजकृता**=राजाओं से की गई, **स्त्रीकृता**=स्त्रियों से की गई तथा **ब्रह्मभिः कृता**=ब्राह्मणों से की गई कृत्या **कर्तारम्**=कृत्या के करनेवाले को इसप्रकार **ऋच्छतु**=प्राप्त हो, **इव**=जैसे **पत्या नुत्ता**=पति से परे धकेली हुई **जाया**=पत्नी **बन्धु**=अपने मातृ-बन्धुओं को पुनः प्राप्त होती है।

भावार्थ—शूद्रों, राजाओं, स्त्रियों व ब्राह्मणों से की गई कृत्या कर्त्ता को पुनः इसप्रकार प्राप्त हो, जैसेकि पति से परे धकेली हुई पत्नी अपने मातृबन्धुओं को पुनः प्राप्त होती है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

क्षेत्रे गोषु पुरुषेषु

अनयाऽहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु॥ ४॥

१. **अहम्**=मैं **अनया ओषध्या**=इस अपामार्ग नामक ओषधि से (अ० ४.१८.५) उन **सर्वाः कृत्याः**=सब हिंसा-प्रयोगों को **अदूदुषम्**=दूषित करता हूँ, **याम्**=जिस हिंसा-प्रयोग को **क्षेत्रे**=मेरे शरीररूप क्षेत्र के विषय में **चक्रुः**=करते हैं (इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते), **याम्**=जिस हिंसा-प्रयोग को **गोषु**=इन्द्रियों के विषय में करते हैं, **वा**=अथवा **यां ते पुरुषेषु**=जिसे तेरे पुरुषों—बन्धुओं के विषय में करते हैं।

भावार्थ—अपामार्ग ओषधि के प्रयोग से शरीर और इन्द्रियों के सब रोग दूर हो जाते हैं।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अघ अघकृत् के लिए, The biter bit

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते। प्रत्यक्प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत्॥ ५॥

१. **अघम्**=यह हिंसारूप पाप **अघकृते अस्तु**=इस पाप को करनेवाले के लिए ही हो। **शपथः**=यह आक्रोश **शपथीयते**=शाप देनेवाले के लिए ही हो। हम इस अघ व शपथ को **प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मः**=वापस भेजे देते हैं, **यथा**=जिससे यह **कृत्याकृतं हनत्**=हिंसा करनेवाले को ही नष्ट करे।

भावार्थ—अघकृत् को ही उसका पाप प्राप्त होता है, शाप देनेवाले को ही शाप लगता है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रतीचीनः आङ्गिरसः

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून्कृत्याकृतो जहि॥ ६॥

१. **प्रतीचीनः**=(प्रति अञ्च्) प्रत्याहार की वृत्तिवाला—इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत्त करनेवाला, अतएव **आङ्गिरसः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाला, **अध्यक्षः**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता यह व्यक्ति **नः**=हमारा **पुरोहितः**=पुरोहित है। यह **कृत्याः**=शत्रुकृत् सब हिंसाप्रयोगों को **प्रतीचीः**=फिर लौट जानेवाला **आकृत्य**=करके **अमून्**=उन **कृत्याकृतः**=हिंसा करनेवालों को ही **जहि**=विनष्ट करे।

भावार्थ—हम अन्तर्मुखी वृत्तिवाले अतएव अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले, इन्द्रियों के अधिष्ठाता बनकर औरों के लिए आदर्शरूप हों और उनसे की गई कृत्याओं को वापस भेजकर उन्हीं का विनाश करें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मा अस्मान् इच्छः अनागसः

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्य ∫म्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व माऽस्मानिच्छो अनागसः॥ ७॥

१. हे **कृत्ये**=हिंसा के प्रयोग! **यः**=जिसने **त्वा उवाच**=तुझे यह कहा कि **परा इह एति**=परे जा और अमुक को मार, तू **तम्**=उस **प्रतिकूलम्**=हमारे विरोध में **उदाय्यम्**=(उत् अय्+य) उठनेवाले शत्रु के पास ही **अभिनिवर्तस्य**=वापस लौट जा, **अनागसः अस्मान् मा इच्छः**=निरपराध हम लोगों को मारने की इच्छा मत कर।

भावार्थ—कृत्या-प्रयोग हम निरपराधियों को मारनेवाला न हो। यह प्रयोक्ता का ही विनाश करे।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऋभुः धिया रथस्य इव

यस्ते॒ परू॑षि सन्दधौ॒ रथ॑स्येव॒ भुर्धि॒या।
तं ग॑च्छ॒ तत्र॒ तेऽय॑न॒मज्ञा॑तस्ते॒ऽयं जन॑ः॥ ८॥

१. **इव**=जैसे **ऋभुः**=शिल्पी **रथस्य**=रथ के जोड़ों को **धिया**=बुद्धि के द्वारा मिला देता है, उसी प्रकार **यः**=जिसने बड़ी चतुरता से हे कृत्ये! **ते परूंषि संदधौ**=तेरे पर्वों को जोड़ा है, तू **तं गच्छ**=उसी को प्राप्त हो, **तत्र ते अयनम्**=वहाँ ही तेरा निवास-स्थान है, **अयं जनः**=यह जन, अर्थात् हम लोग **ते अज्ञातः**=तेरे अज्ञात ही हों।

भावार्थ—कृत्या का चतुर निर्माता ही कृत्या का शिकार बने। हिंसा का प्रयोग करनेवाला ही उस प्रयोग से हिंसित हो।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

प्रतिवर्त्म पुनःसरम्

ये त्वा॑ कृ॒त्वाले॑भि॒रे वि॑द्वु॒ला अ॑भिचा॒रिण॑ः।
शं॑भ्वी३॒दं कृ॑त्या॒दूष॑णं॒ प्रति॒वर्त्म॑ पु॒नः॒स॒रं तेन॑ त्वा स्नपयामसि॥ ९॥

१. हे कृत्ये! **ये**=जो **विद्वला**=(विद् वेदनायाम्) वेदना प्राप्त करानेवाले **अभिचारिणः**=हिंसा-प्रयोगों को करनेवाले लोग **त्वा**=तुझे **कृत्वा**=करके **अलेभिरे**=प्राप्त करते हैं, **इदम्**=यह **प्रतिवर्त्म**=उलटे रास्ते (वापस) उसे **पुनःसरम्**=फिर लौटा देना **कृत्यादूषणम्**=हिंसक प्रयोग को दूषित करना है। **इदम्**=यह **शम्भु**=शान्ति उत्पन्न करनेवाला है, **तेन**=उस उलटे रास्ते (वापस) लौटा देने के द्वारा **त्वा**=तुझे हे कृत्ये! **स्नपयामसि**=शुद्ध कर डालते हैं—तेरा सफ़ाया कर देते हैं।

भावार्थ—हिंसक प्रयोग को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि उसे उलटे रास्ते (वापस) लौटा दिया जाए, अर्थात् गाली का उत्तर गाली में न दिया जाए। '**आक्रुष्टः कुशलं वदेत्**'।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पापम् अपतिष्ठतु द्रविणम् उप तिष्ठतु

यद्दु॑र्भगां॒ प्रस्न॑पितां मृ॒तव॑त्सामुपेयि॒म।
अपै॑तु॒ सर्वं॑ मत्पा॒पं द्रवि॑णं॒ मोप॑ तिष्ठतु॥ १०॥

१. **यत्**=जब **दुर्भगाम्**=दौर्भाग्यवाली, अर्थात् जिसके पति पूर्व ही जा चुके हैं, **प्रस्नपिताम्**=जो शुद्ध आचरणवाली है, **मृतवत्साम्**=जो मृतपुत्रवाली है, अर्थात् जिसकी सन्तान भी चली गई है, अतएव जो बड़ी शोकातुर है, उस स्त्री को **उपेयिम**=हम समीपता से प्राप्त हों, तो उस समय **सर्वं पापम्**=सब पाप, अशुभ मनोवृत्ति **मत् अप एतु**=मुझसे दूर हो। **द्रविणं मा उपतिष्ठतु**=(strength, power, valour, prowess) शक्ति मुझे प्राप्त हो। इस शक्ति के द्वारा पाप से ऊपर उठा हुआ मैं उस शोकातुरा के लिए सहायक हो सकूँ।

भावार्थ—असहाय परन्तु शुद्ध आचरणवाली स्त्री को पाकर हम पाप में न फँस जाएँ,

अपितु शक्तिशाली बनकर हम उसके दुःख को कम करने में सहायक ही बनें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सन्देश्य-पाप' निवृत्ति

यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
सन्देश्यादुत्सर्वस्मात्पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः॥ ११॥

१. **यत्**=जब **पितृभ्यः ददतः**=पितरों के लिए देते हुए, अर्थात् पितृयज्ञ को सम्यक् सम्पन्न करते हुए **वा**=अथवा **यज्ञे**=(ददतः) अग्निहोत्र आदि यज्ञों में आहुतियाँ देते हुए **ते**=वे उत्तम आचरण करनेवाले लोग **नाम जगृहुः**=प्रभु-नाम का ग्रहण करते हैं, अर्थात् प्रभु का स्मरण करते हैं और प्रभु-स्मरण के कारण ही उन यज्ञों का अहंकार नहीं करते तब **इमाः ओषधीः**=ये दोषों का दहन करनेवाले आचार्य—विद्वान् लोग **त्वा**=तुझे **सर्वस्मात्**=सब **सन्देश्यात्**=(सन्दिश to give, grant) दान-सम्बन्धी **पापात्**=पाप से **मञ्चन्तु**=मुक्त करें, अर्थात् वे ठीक से प्रेरणा देते हुए यज्ञों में अज्ञानवश हो जानेवाले अपराधों से हमें बचाएँ।

भावार्थ—ज्ञानी लोग पितृयज्ञ व देवयज्ञादि उत्तम कर्मों को करते हुए प्रभुनाम-स्मरण से अहंकारवाले नहीं होते। वे दोषों को दग्ध करनेवाले ज्ञानी पुरुष हमें भी इन दानों में हो जानेवाले अपराधों से बचाएँ।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥

वीरुधः वीर्येण, ब्रह्मणः ऋग्भिः, ऋषीणां पयसः

देवैनसात्पित्र्यान्नामग्राहात्सन्देश्या ∫ दभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्ये ∫ ण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम्॥ १२॥

१. **देवैनसात्**=देवों के विषय में किये गये पाप से, अर्थात् देवयज्ञ आदि न करने से, **पित्र्यात्**=पितरों के विषय में किये गये पाप से—उनका उचित आदर न करने से **नामग्राहात्**=नाम लेते रहने से, अर्थात् दूसरों पर झूठा दोष लगाने से, **सन्देश्यात्**=दान के विषय में होनेवाले पाप से तथा **अभिनिष्कृतात्**=(Injuring, speaking ill of) हिंसन व बुराई करने से **त्वा**=तुझे सब देव **मुञ्चन्तु**=मुक्त करें। सब देव **वीरुधः वीर्येण**=लताओं के वीर्य से—लताओं के भोजन से उत्पन्न शक्ति के द्वारा, **ब्रह्मणः ऋग्भिः**=वेदज्ञान की ऋचाओं से—विज्ञान प्रतिपादक मन्त्रों से तथा **ऋषीणां पयसा**=मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा दिये गये ज्ञानदुग्ध से तुझे दोषों से मुक्त करें।

भावार्थ—हम ओषधि व वनस्पतियों का भोजन करते हुए शरीर में शक्ति का सम्पादन करें। वेद की ऋचाओं से विज्ञान को प्राप्त करें। ऋषियों के प्रवचनों से ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करें। इसप्रकार हमारे सब पाप व पापवृत्तियाँ दूर हो जाएँगी।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**उरोबृहती** ॥

ब्रह्मनुत्तं दुर्भूतं अपायती

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति॥ १३॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **वातः**=तीव्र वायु **भूम्याः**=भूमि के **रेणुम्**=धूलकणों को **च**=और **अन्तरिक्षात्**=अन्तरिक्ष से **अभ्रम्**=मेघ को **च्यावयति**=स्थानभ्रष्ट कर देता है, **एव**=इसी प्रकार **सर्वम्**=सब **दुर्भूतम्**=दुर्भाव—बुरी भावनाएँ, **ब्रह्मनुत्तम्**=ज्ञान द्वारा प्रेरित हुई-हुई **मत्**=मुझसे **अपायति**=पृथक् हो जाती हैं।

भावार्थ—ज्ञान द्वारा सब दुर्भाव मानसस्थली से इसप्रकार उखड़ जाते हैं जैसेकि तीव्र गतिवाले वायु के द्वारा भूमि से धूल-कण स्थानभ्रष्ट हो जाते हैं और अन्तरिक्ष से मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'शक्तियुक्त ज्ञान' द्वारा कृत्या का अपनोदन

अप॑ क्राम॒ नान॑दती॒ विन॑द्धा॒ गर्द॒भीव॑।
क॒र्तॄन्त्क्षस्वे॒तो नु॒त्ता ब्रह्म॑णा वी॒र्या॑ ऽवता॥ १४॥

१. हे कृत्ये=हिंसा की क्रिये! तू **वीर्यावता ब्रह्मणा**=वीर्यवान् ज्ञान के द्वारा **नुत्ता**=दूर प्रेरित हुई-हुई **इतः**=यहाँ से **कर्तॄन्**=अपने उत्पन्न करनेवालों के पास ही **नक्षस्व**=चली जा—उन्हीं को प्राप्त हो। **इव**=जैसेकि **विनद्धा**=बन्धन से रहित हुई-हुई **गर्दभी**=गधी **नानदती**=रेंकती हुई भाग खड़ी होती है, उसी प्रकार **अपक्राम**=तू यहाँ से दूर चली जा।

भावार्थ—ज्ञान और शक्ति का सम्पादन करते हुए हम शत्रुकृत् कृत्याओं को अपने से दूर भगानेवाले हों।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**चतुष्पदाविराड्जगती** ॥

कुरूटिनी वाहिनी

अ॒यं पन्था॑ः कृ॒त्य॒ इति॑ त्वा नयामोऽभिप्रहि॑ता॒ं प्रति॑ त्वा॒ प्र हि॑ण्मः।
तेना॒भि या॑हि भञ्ज॒त्यन॑स्वतीव वा॒हिनी॑ वि॒श्वरू॑पा कुरू॒टिनी॑॥ १५॥

१. हे **कृत्ये**=हिंसा-क्रिये! तेरे लिए **अयं पन्थाः**=यह मार्ग है। **इति त्वा नयामः**=तुझे इससे ले-जाते हैं। **अभिप्रहिताम्**=हमारी ओर भेजी हुई **त्वा**=तुझे **प्रतिप्रहिण्मः**=भेजनेवाले के प्रति भेजते हैं। २. **तेन**=उस मार्ग से **अभियाहि**=तू शत्रू के प्रति इसप्रकार जा **इव**=जैसेकि **अनस्वती**=रथोंवाली **विश्वरूपा**=नाना रूपों को धारण करनेवाली—'हाथी, घोड़े, रथ व पदातियों' से युक्त **कुरूटिनी**=(कुटिलं प्रतिघातिनी, रुट प्रतिघाते) प्रबल प्रतिघात करनेवाली **वाहिनी**=सेना **भञ्जती**=शत्रुओं का मर्दन करती हुई जाती है।

भावार्थ—कृत्या को हम कर्त्ता के प्रति वापस भेजते हैं। वह पूर्ण सेना के समान शत्रु पर आक्रमण करती हुई गति करती है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नव्वे नदियों के पार

परा॑क्ते॒ ज्योति॒रप॑थं ते अ॒र्वाग॒न्यत्रा॒स्मद॑यना कृणुष्व।
परे॑णेहि नव॒तिं ना॒व्या॒३॑ अति॑ दु॒र्गाः स्रो॒त्या मा क्ष॑णिष्ठाः॒ परे॑हि॥ १६॥

१. हे कृत्ये! **ते ज्योतिः पराक्**=तेरे लिए परे प्रकाश है। **अर्वाक् ते अपथम्**=इधर तेरे लिए मार्ग नहीं है। **अस्मत् अन्यत्र**=हमसे भिन्न अन्य स्थानों में तू **अयना कृणुष्व**=अपना मार्ग बना। २. **परेण इहि**=तू दूर मार्ग से गति कर। **नाव्याः**=नौका से तैरने योग्य—गहरी **नवतिम्**=नव्वे (अधिक) **दुर्गाः**=अलंघ्य—कठिनता से लाँघने योग्य **स्रोत्याः**=नदियों को **अति**=लाँघकर **परा इहि**=तू दूर चली जा। **मा क्षणिष्ठाः**=हमें हिंसित करनेवाली मत हो (क्षणु हिंसायाम्)।

भावार्थ—कृत्या हमारी ओर आनेवाली न हो। हमसे वह दूर ही रहे। नव्वे नदियों के पार रहती हुई वह हमारा हिंसन करनेवाली न हो।

सूचना—'नव्वे नदियों पार'—यह सुदूरता के भाव का सूचक वाक्यखण्ड (मुहावरा) है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

हिंसा प्रयोग व वंशोच्छेद

वातइव वृक्षान्नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिषः एषाम्।
कर्तॄन्निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय॥ १७॥

१. हे कृत्ये=हिंसा के प्रयोग! तू शत्रुओं को इसप्रकार **निमृणीहि**=निर्मूल कर दे **इव**=जैसेकि **वातः वृक्षान्**=वायु वृक्षों को निर्मूल कर डालता है। **पादय**=इन्हें पाँव तले रौंद डाल—दूर भगा दे। **एषाम्**=इनके **गां अश्वं पुरुषम्**=गौ, अश्व व पुरुषों को **मा उच्छिषः**=जीवित मत छोड़। २. **इतः**=यहाँ से **निवृत्य**=लौटकर **कर्तॄन्**=इन हिंसा-प्रयोग करनेवाले पुरुषों को **अप्रजास्त्वाय बोधय**=प्रजाहीन हो जाने की चेतावनी दे। उन्हें यह स्पष्ट कर दे कि इन प्रयोगों का परिणाम इतना भयंकर होगा कि तुम्हारा वंश ही उच्छिन्न हो जाएगा।

भावार्थ—हिंसक पुरुषों का हिंसा-प्रयोगों से स्वयं ही हिंसन हो जाता है। उनके सन्तान व वंश के ही उच्छेद हो जाने की आशंका हो जाती है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**१८ त्रिष्टुप्, १९ चतुष्पदाजगती** ॥

बर्हिषि, श्मशाने, क्षेत्रे

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचखनुः।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम्॥ १८॥
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्वइव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम्॥ १९॥

१. **यां कृत्याम्**=जिस छेदनक्रिया की साधनभूत वस्तु को, **वा**=अथवा **वल-गम्**=(वल् संवरणे, ग=गम्) छिपे रूप में गति करनेवाली बम्ब आदि वस्तु को **ते बर्हिषि**=तेरी कुशादि घासों में, **याम्**=जिसे **श्मशाने**=समीपस्थ श्मशान में व **क्षेत्रे**=खेत में **निचखनुः**=गाड़ देते हैं, **वा**=अथवा जो **धीरतराः**=(तृ अभिभवे) धीरों का भी अभिभव करनेवाले—अपने को अधिक बुद्धिमान् माननेवाले लोग **पाकम्**=पवित्र व **अनागसम्**=निरपराध **सन्तं त्वा**=होते हुए भी तुझे **गार्हपत्ये अग्नौ**=गार्हपत्य अग्नि में **अभिचेरुः**=अभिचरित करते हैं। अभिचारयज्ञ द्वारा अथवा किसी प्रकार गार्हपत्य अग्नि के प्रयोग द्वारा तुझे नष्ट करने का यत्न करते हैं। २. **उपाहृतम्**=उपहाररूप में दी गई **अनुबुद्धम्**=अनुकूल रूप से जानी गई अथवा **निखातम्**=कहीं क्षेत्र आदि में गाड़ी गई **वैरम्**=(वीरस्य भावः, वि+ईर्) विशिष्टरूप से कम्पित करनेवाली **त्सारी**=(त्सर छद्मगतौ) कुटिल गतिवाली—छिपेरूप में गतिवाली (वल-ग) **कर्त्रम्**=(कृत्याम्) घातक वस्तु को **अन्व-विदाम**=हमने समझ लिया है, **तत्**=अतः यह **कर्त्रम्**=कृत्या **यतः आभृतम्**=जहाँ से यहाँ पहुँचाई गई है वहीं **एतु**=चली जाए। यह **तत्र**=वहाँ ही—जहाँ से आई है उस आनेवाले स्थान पर **अश्वः इव**=घोड़े की भाँति अथवा व्यापक अग्नि की भाँति **विवर्तताम्**=लौट जाए और **कृत्याकृतः प्रजां हन्तु**=कृत्या करनेवाले की प्रजा को ही नष्ट करे।

भावार्थ—घातक प्रयोग की वस्तु घास आदि में छिपाकर रक्खी जा सकती है, समीप के शमशान या खेत में गाड़ी जा सकती है अथवा गार्हपत्य अग्नि में कोई घातक प्रयोग किया जा सकता है। ये भी सम्भव है कि ऐसी कोई घातक वस्तु बड़ी अनुकूल-सी प्रतीत होती हुई उपहार रूप में दी जाए। ये सब उस कृत्या को करनेवालों को ही प्राप्त हों—उन्हीं की प्रजा के विनाश का कारण बनें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

स्वायसाः असयः

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि॥ २०॥

१. **नः गृहे**=हमारे घर में **स्वायसाः**=उत्तम लोहे की बनी हुई **असयः सन्ति**=तलवारें हैं और हे **कृत्ये**=शत्रुकृत् हिंसा-प्रयोग! **यतिधा ते परूंषि**=जितने प्रकार के तेरे पर्व हैं उन्हें भी **विद्म**=हम जानते हैं। हम अपने यहाँ शत्रुविनाश के लिए अस्त्र-शस्त्रों को तैयार रक्खें तथा शत्रुकृत् हिंसा-प्रयोगों के प्रति सावधान रहें। २. शत्रुकृत् हिंसा-प्रयोग को सम्बोधित करते हुए हम कह सकें कि **उत्तिष्ठ एव**=तू यहाँ से उठ ही खड़ा हो, **इतः परा इहि**=यहाँ से सुदूर स्थान में चला जा। **अज्ञाते**=हे अज्ञातरूप में रहनेवाली हिंसाक्रिये! **इह किम् इच्छसि**=यहाँ तू क्या चाहती है, अर्थात् यहाँ तेरा क्या काम है? तुझे हम समझ गये हैं—अब तू यहाँ से दूर ही रह।

भावार्थ—हम अपने शस्त्रों को उत्तम स्थिति में रक्खें। शत्रुकृत् हिंसा-प्रयोगों को ठीक से जानकर उन्हें अपने से दूर करें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

इन्द्राग्नी

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान्रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती॥ २१॥

१. हे **कृत्ये**=शत्रुकृत् छेदन-भेदन क्रिया के लिए मनुष्यरूप में बनाई गई वस्तु! **ते ग्रीवाः**=तेरी गर्दन की नाड़ियों को **च पादौ अपि**=और पाँवों को भी **कर्त्स्यामि**=मैं छिन्न कर डालूँगा, अतः **निर्द्रव**=तू यहाँ से दूर भाग जा। २. **इन्द्राग्नी**=राष्ट्र में हमारे सेनापति व राजा अथवा व्यक्ति में बल व प्रकाश के तत्त्व **अस्मान् रक्षताम्**=हमारा रक्षण करें। **यौ**=बल व प्रकाश के तत्त्व अथवा सेनापति व राजा **प्रजानाम् प्रजावती**=प्रजाओं में प्रशस्त प्रजाओंवाले हैं—अथवा माता के समान प्रजाओं का रक्षण करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम शत्रुकृत् घातक प्रयोगों को दूर करनेवाले हों। बल व प्रकाश के तत्त्व हमारा रक्षण करें। ये दोनों तत्त्व प्रजाओं में प्रशस्त प्रजावाले हैं, अथवा सेनापति व राजा हमारा रक्षण करें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् (एकावसाना)** ॥

'सोमः' राजा अधिपाः मृडिता च

सोमो राजाऽधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु॥ २२॥

१. **सोमः**=शरीरस्थ सोमशक्ति **राजा**=हमारे जीवन को दीप्त बनानेवाली है, **अधिपाः**=हमारा खूब ही रक्षण करनेवाली है **च मृडिता**=और हमारे जीवन को सुखी बनानेवाली है। २. **भूतस्य पतयः**=प्राणियों के रक्षक सब तत्त्व **नः मृडयन्तु**=हमें सुखी करें।

भावार्थ—शरीर में सोम का रक्षण करते हुए हम दीप्त, रक्षित व सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाभुरिक्विषमागायत्री** ॥

पापकृत्, कृत्याकृत्, दुष्कृत्

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युते देवहेतिम्॥ २३॥

१. संसार को उत्पन्न करनेवाले प्रभु 'भव' हैं (भूः), संसार का संहार (प्रलय) करनेवाले प्रभु 'शर्व' हैं। **भवाशर्वौ**=उत्पादक व संहारक प्रभु **पापकृते**=पाप करनेवाले के लिए,

कृत्याकृते=औरों का छेदन-भेदन करनेवाले के लिए तथा **दुष्कृते**=अशुभ कर्मों को करनेवाले के लिए **देवहेतिम्**=देवों के वज्रभूत **विद्युतम्**=विद्युत् को **अस्यताम्**=फेंकनेवाले हों।

भावार्थ—पापकृत्, कृत्याकृत्, दुष्कृत् लोग उत्पादक व संहारक प्रभु के द्वारा फेंकी गई विद्युत् के शिकार हों। ये लोग आधिदैविक आपत्तियों के द्वारा नष्ट हो जाएँ।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

अष्टापदी भूत्वा

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने॥ २४॥

१. हे **दुच्छुने**=दुष्ट गतिवाली व दुःखदायिनी कृत्ये! **यदि**=यदि तू **कृत्याकृता**=इन छेदन-भेदन का प्रयोग करनेवाले पुरुषों के द्वारा **संभृता**=सम्यक् बनाई गई, **विश्वरूपा**=अनेक रूपोंवाली **द्विपदी**=दो पाँवोंवाली व **चतुष्पदी**=चार पाँवोंवाली **आ इयथ**=हमारे समीप आती है, तो **सा**=वह तू **अष्टापदी भूत्वा**=आठ पावोंवाली बनकर—दुगुनी व चौगुनी के स्थान में आठ गुनी होकर **इतः**=यहाँ से **पुनः परेहि**=फिर वापस जानेवाली हो।

भावार्थ—हिंसा का प्रयोग हिंसा करनेवाले को ही पुनः द्विगुणित होकर प्राप्त हो।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अभ्यक्ता, अक्ता, स्वरंकृता

अभ्यक्ताक्ता स्व ∫रंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम्॥ २५॥

१. **अभ्यक्ता**=चन्दनादि लेप से सब प्रकार से सुन्दर, **अक्ता**=तैलादि से मर्दित, **सु अरंकृता**=उत्तम रीति से आभूषणों से सुसज्जित होकर भी वेश्या के समान **सर्वं दुरितं भरन्ती**=सब दुरित (दुराचरण) को अपने में धारण करती हुई तू हे कृत्ये! **परा इहि**=हमसे दूर जा। २. हे **कृत्ये**=छेदन-क्रिये! तू उसी प्रकार **कर्तारं जानीहि**=अपने उत्पादक को जान, **इव**=जैसेकि **दुहिता स्वं पितरम्**=लड़की अपने पिता को ही समझती है, पति से लौटाई हुई वह पिता के पास ही रहती है और पिता का ही व्यय कराती है। जैसे दुहिता पिता के पास लौट आती है, उसी प्रकार हे कृत्ये! तू कर्ता के पास ही लौट जा।

भावार्थ—बड़ी सुन्दर आकृति की कृत्या का प्रयोग भी कर्त्ता के समीप ही लौट जाए। यह सुन्दराकृति वेश्या के समान विनाशक ही है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मृगः सः, मृगयुः त्वं

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति॥ २६॥

१. हे **कृत्ये**=हिंसाक्रिये! तू **परा इहि**=यहाँ से दूर जा, **मा तिष्ठः**=हमारे समीप स्थित मत हो। **विद्धस्य एव**=बाण से घायल शिकार के पैरों के निशान देखकर जिस प्रकार शिकार खोज लिया जाता है, उसी प्रकार तू **पदं नय**=शत्रु के पैर खोज-खोजकर उस तक पहुँच जा। २. हे कृत्ये! **सः मृगः**=वह शत्रु मृग है, **त्वं मृगयुः**=तू उस मृग का शिकार करनेवाली है। वह **त्वा**=तुझे **निकर्तुं न अर्हति**=काटने योग्य नहीं है। तू उसी के पास लौटकर उसका छेदन करनेवाली हो।

भावार्थ—हे कृत्ये! तू अपने करनेवाले के समीप ही पहुँच। तू उसी को नष्ट कर। तुझ

मृगयु का वह मृग है। तुझे उसको मारना है, वह तुझे नहीं मार सकता।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रक्षणात्मक, न कि आक्रमणात्मक (युद्ध)

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापरः इष्वा।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति॥ २७॥

१. **अपरः**=(अ-परः) शत्रुत्व की भावना से रहित पुरुष **उत**=भी **पूर्वासिनम्**=(असु क्षेपणे) पहले शस्त्र फेंकनेवाले को **प्रत्यादाय**=उलटा पकड़कर—सैन्य द्वारा उसका स्वागत करके—**इष्वा हन्ति**=बाण से मारता है। श्रेष्ठ पुरुष पहले आक्रमण नहीं करता, परन्तु आक्रान्ता का सेना द्वारा स्वागत करके उसे बाणों से प्रहत करता है। २. **अ-परः**=यह पर (शत्रु) न होता हुआ—व्यर्थ में वैर न करता हुआ **उत**=निश्चय से **पूर्वस्य निघ्नतः**=पहले हनन (चोट) करते हुए के **प्रतिहन्ति**=प्रतिरोध के लिए चोट करता ही है।

भावार्थ—आक्रमणात्मक युद्ध वाञ्छनीय नहीं है, परन्तु रक्षणात्मक युद्ध तो करना ही है।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदागायत्री** ॥

यः त्वा चकार, तं प्रति

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ। यस्त्वा चकार तं प्रति॥ २८॥

हे कृत्ये! हिंसनक्रिये! **मे एतत् वचः**=मेरे इस वचन को **शृणु हि**=निश्चय से सुन ही। **अथ इहि**=और अब वहाँ ही जा **यतः आ इयथ**=जहाँ से तू आई है। **यः त्वा चकार**=जो तुझे करता है, **तं प्रति**=उसी के प्रति तू जा।

भावार्थ—हम कभी भी पहले आक्रमण न करें, परन्तु शत्रुकृत् हिंसा को उसी के प्रति लौटाएँ।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**मध्येज्योतिष्मतीजगती** ॥

निरपराध का हिंसन भयंकर पाप है

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव॥ २९॥

१. हे **कृत्ये**=हिंसनक्रिये! **अनागः हत्या**=निष्पाप का मारना **वै**=निश्चय से **भीमा**=भयंकर है—भयप्रद परिणामों को पैदा करनेवाला है। तू **नः**=हमारे **गां अश्वं पुरुषम्**=गौ, घोड़े व पुरुषों को **मा वधीः**=मत मार। २. हे कृत्ये! तू **यत्र यत्र निहिता असि**=जहाँ-जहाँ भी रक्खी गई है—घासों में, खेतों में, श्मशानों में—जहाँ कहीं भी शत्रु ने तुझे रखने का प्रयत्न किया है, **ततः त्वा उत्थापयामसि**=वहाँ से तुझे उखाड़ फेंकते हैं—उठाकर दूर कर देते हैं। तू **पर्णात् लघीयसी भव**=पत्ते से भी हल्की हो जा, अर्थात् तेरा उखाड़ फेंकना हमारे लिए कठिन न हो।

भावार्थ—दुष्ट शत्रुभूत लोग निरपराध लोगों को भी आहत करने के लिए बम्बादि भारी-भारी हिंसक प्रयोगों को इधर-उधर छिपाकर रखने का प्रयत्न करते हैं। हम इन प्रयोगों को ढूँढकर विनष्ट कर दें।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तमः जालम्

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिताइव।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि॥ ३०॥

१. हे लोगो! **यदि**=यदि तुम **तमसा आवृताः स्थ**=अन्धकार से आच्छादित-से हो, अथवा **जालेन**=जाल से **अभिहिताः इव**=बद्ध-से हो, अर्थात् शत्रुकृत् कृत्याओं के कारण यदि चारों ओर अन्धकार-सा छा गया है और ऐसा लगता है कि हमारे लोग जाल से बद्ध-से हो गये हैं, तो **इतः**=यहाँ से **सर्वाः कृत्याः**=सब हिंसा-प्रयोगों को **संलुप्य**=लुप्त करके—छिन्न करके **पुनः**=फिर **कर्त्रे**=इनके करनेवालों के लिए ही **प्रहिण्मसि**=हम भेजते हैं।

भावार्थ—रक्षकवर्ग का यह कर्त्तव्य है कि शत्रुकृत् अन्धकारों व जाल-बन्धनों से प्रजा का रक्षण करे।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कृत्याकृत्, वलगी, अभिनिष्कारी

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून्कृत्याकृतो जहि॥ ३१॥

१. हे **कृत्ये**=छेदन-भेदन की क्रिये! तू **कृत्याकृतः**=छेदन करनेवालों तथा **वलगिनः**=गुप्त प्रयोगों को करनेवालों की (वल संवरणे) तथा **अभिनिष्कारिणः**=आक्रमण करनेवाले की व बुरा सोचनेवाले की (injuring, thinking ill of) **प्रजाम् मृणीहि**=प्रजा को भी कुचल दे, **मा उच्छिषः**=उन्हें बचा मत। **अमून् कृत्याकृतः**=इन हिंसन करनेवालों को **जहि**=तू नष्ट कर दे।

भावार्थ—कृत्या हिंसन करनेवाले लोगों का ही उच्छेद करे।

ऋषिः—**प्रत्यङ्गिरसः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**द्व्यनुष्टुबगर्भापञ्चपदातिजगती** ॥

कृत्या प्रयोगों का विनाश

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृतं कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि॥ ३२॥

१. **यथा**=जैसे **सूर्यः तमसः परिमुच्यते**=सूर्य अन्धकार से मुक्त हो जाता है **च**=और **रात्रिम्**=रात्रि को तथा **उषसः केतून्**=उषा के प्रज्ञापक (प्रकाशमय) चिह्नों को भी **जहाति**=छोड़ देता है, **एव**=इसी प्रकार **अहम्**=मैं **कृत्याकृता**=हिंसनक्रिया करनेवाले पुरुष के द्वारा **कृतम्**=किये हुए **सर्वम्**=सब **दुर्भूतम्**=दुष्ट **कर्त्रम्**=घातक प्रयोग को उसी प्रकार **जहामि**=छोड़ता हूँ, **इव**=जैसेकि **हस्ती**=हाथी **दुरितं रजः**=बुरी प्रकार से प्राप्त हुई-हुई धूल को परे फेंक देता है।

भावार्थ—हम शत्रुकृत् हिंसा-प्रयोगों को इसप्रकार दूर कर पाएँ जैसेकि सूर्य अन्धकार को दूर कर देता है और हाथी बुरी तरह से चिपकी धूल को दूर कर देता है।

सब प्रकार के पापों व अन्धकारों को दूर करने के लिए प्रभु का स्मरण करता हुआ यह पुरुष नर-समूह का अयन (रक्षण-स्थान) बनता है, अतः 'नारायण' नामवाला होता है। यह प्रभु-स्मरण करता हुआ कहता है कि—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'पाष्र्णी-प्रतिष्ठा' केन ?

केन पाष्र्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्॥ १॥

१. **पूरुषस्य**=पुरुषदेह की **पाष्र्णी**=दोनों एडियाँ **केन आभृते**=किसने बनायी हैं? **मांसं केन**

संभृतम्=मांस को किसने सम्यक् भृत (धारित) किया है ? **केन गुल्फौ**=किसने गिट्टों को लगाया है ? २. **केन पेशनीः**=किसने सुन्दर अवयवोंवाली (पिश अवयवे) **अंगुलीः**=अंगुलियों को संभृत किया है ? **केन खानि**=किसने इन्द्रिय-छिद्रों को बनाया है ? **केन उच्छ्लङ्खौ**=(उत् श्लंक् गतौ) किसने उत्कृष्ट गतिवाले दोनों शिरःकपाल बनाये हैं ? **मध्यतः**=शरीर के मध्य में **कः**=किसने **प्रतिष्ठाम्**=बैठने के आधारभूत 'श्रोणिफलक'—नितम्ब बनाये हैं ?

भावार्थ—एक-एक अंग की रचना में प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

गुल्फौ-जानू

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य।
जङ्घे निर्ऋत्य न्य ∫ दधुः क्व ∫ स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत॥ २॥

१. **कस्मात्**=किस कारण से **नु**=अब **गुल्फौ**=गिट्टे **अधरौ अकृण्वन्**=नीचे बनाये हैं और **पूरुषस्य**=पुरुष-शरीर के **अष्ठीवन्तौ उत्तरौ**=घुटने ऊपर बनाये गये हैं ? २. क्योंकर **जङ्घे**=जाँघें **निर्ऋत्य न्यदधुः**=अलग-अलग करके रक्खी गई हैं ? **जानुनोः सन्धी क्वस्वित्**=घुटनों की सन्धियों को कहाँ रक्खा गया है ? **कः उ तत् चिकेत**=कौन इसे निश्चय से जानता है ?

भावार्थ—इस शरीर की रचना को पूरा-पूरा समझना कठिन है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कुसिन्ध (धड़)

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव॥ ३॥

१. **चतुष्टयम्**=चार प्रकार के **संहित-अन्तम्**=सटे हुए सिरोंवाला यह **शिथिरम्**=शिथिल (flabby) **कबन्धम्**=धड़ **जानुभ्याम् ऊर्ध्वम्**=घुटनों के ऊपर **युज्यते**=जोड़ा गया है और **यत्**=जो **श्रोणी**=दोनों कूल्हे (The hip, the buttocks) और **ऊरू**=जाँघें हैं, **कः उ**=किसने **तत् जजान**=उन्हें निर्मित किया है ? **याभ्याम्**=जिनके साथ **कुसिन्धम्**=(कुस श्लेषणे, धा) श्लेष का धारक (परस्पर संभक्त) अथवा (कु+स्यन्द) मलों का प्रवाहक (कु सिन्ध्) व छोटी-छोटी नाड़ियों से पूर्ण यह धड़ **सुदृढं बभूव**=दृढ़ हुआ है।

भावार्थ—यहाँ ऊरू व श्रोणि-प्रदेशों को निर्मित करके उनपर इस धड़ को किसने सुदृढ़ किया है ?

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उरः-पृष्टीः

कति देवाः कतमे त आसन्य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।
कति स्तनौ व्य ∫ दधुः कः कपोडौ कति स्कन्धान्कति पृष्टीरचिन्वन्॥ ४॥

१. **ते**=वे **कति**=कितने व **कतमे**=कौन-से **देवाः**=दिव्य पदार्थ थे, **ये**=जिन्होंने **पूरुषस्य**=इस पुरुष के **उरः**=छाती को **ग्रीवाः**=और गले की नाड़ियों को **चिक्युः**=चिन दिया। **कति स्तनौ**=कितनों ने दोनों स्तनों को **व्यदधुः**=बनाया। **कः कपोडौ**=किसने दोनों कपोलों को बनाया। **कति**=कितनों ने **स्कन्धान्**=कन्धों को और **कति**=कितनों ने **पृष्टीः अचिन्वन्**=पसलियों को एकत्र किया।

भावार्थ—शरीर में छाती, ग्रीवा, स्तन, कपोल, स्कन्ध व पृष्टियों की रचना अद्भुत ही है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

बाहू-अंसौ

को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं करवादिति।
अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥ ५ ॥

१. **कः**=किस अद्भुत रचयिता ने **अस्य**=इस पुरुष की **बाहू समभरत्**=भुजाओं को संभृत किया है, **वीर्यं करवात् इति**=जिससे यह वीरतापूर्ण कर्मों को करनेवाला बनता है, **तत्**=उसी कर्त्तव्य-भार को उठाने के उद्देश्य से ही **कः देवः**=किस दिव्य स्रष्टा ने **अस्य कुसिन्धे अधि**=इस पुरुष के धड़ पर **अंसौ आदधौ**=कन्धों को स्थापित किया है।

भावार्थ—भुजाएँ शक्तिशाली कर्मों को करने के लिए दी गई हैं और कन्धे कर्त्तव्यभार को उठाने के लिए प्राप्त कराये गये हैं। हम कर्त्तव्यभार से घबराएँ नहीं, अपितु वीरता के साथ कर्म करनेवाले बनें।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सप्तखानि

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्।
येषां पुरुत्रा विजयस्य महानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

१. **कः**=किसने **शीर्षणि**=सिर में **सप्त खानि विततर्द**=सात इन्द्रिय-गोलकों को खोदा है—बनाया है। **इमौ कर्णौ**=इन दोनों कानों को, **नासिके**=दोनों नासिका-छिद्रों को **चक्षणी**=दोनों आँखों को और **मुखम्**=मुख को किसने बनाया है? २. **येषाम्**=जिन इन्द्रिय-गोलकों की **विजयस्य महानि**=विजय की महिमा में उनके स्वस्थ रहने पर ही **चतुष्पादः द्विपदः**=चौपाये और दोपाये—पशु व मनुष्य सभी प्राणी **पुरुत्रा**=अनेक प्रकार से **यामं यन्ति**=मार्ग पर चलते हैं।

भावार्थ—प्रभु ने किस प्रकार इन दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँख व मुखरूप अद्भुत सात इन्द्रिय-गोलकों को बनाया है। इनकी विजय की महिमा में ही सब प्राणी जीवन-मार्ग में आगे बढ़ते हैं।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पुरूची जिह्वा

हन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम्।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥

१. उस आनन्दमय प्रभु ने ही **हन्वोः**=दोनों जबड़ों के बीच में **पुरूचीम्**=बहुत चलनेवाली **जिह्वाम्**=जिह्वा को **अदधात्**=स्थापित किया है, **अध**=और इस जिह्वा में **महीं वाचम्**=महनीय—महत्त्वपूर्ण वाणी को **अधिशिश्राय**=आश्रित किया है। २. **सः**=वे प्रभु **भुवनेषु अन्तः**=सब भुवनों में **आवरीवर्ति**=वर्त्तमान हो रहे हैं। **अपः वसानः**=सब प्रजाओं को उन्होंने आच्छादित किया हुआ है—सबको अपने गर्भ में धारण किया हुआ है। **कः उ**=निश्चय से कौन **तत् चिकेत**=उस ब्रह्म को जानता है? वह प्रभु अज्ञेयस्वरूप ही हैं।

भावार्थ—जबड़ों में गतिशील जिह्वा का स्थापन कितना अद्भुत है। उस जिह्वा में क्या ही अद्भुत वाणी की शक्ति का स्थापन हुआ है। वे प्रभु सब भुवनों में वर्त्तमान हैं, सब प्राणियों को अपने में धारण कर रहे हैं। प्रभु की गरिमा अव्याख्येय है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मस्तिष्कं ललाटं

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम्।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

१. **यतमः प्रथमः**=जिस प्रथम देव ने—जिस सर्वव्यापक (प्रथ विस्तारे) देव ने **अस्य पूरुषस्य**=इस पुरुष के **मस्तिष्कं ललाटम्**=मस्तिष्क (भेजे) व ललाट (माथे) को **यः**=जिसने **ककाटिकाम्**=सिर के पिछले भाग को व **कपालम्**=खोपड़ी को तथा **हन्वोः चित्यम्**=दोनों जबड़ों के सञ्चय को **चित्वा**=चिनकर **दिवं रुरोह**=अपने प्रकाशमय रूप में आरोहण किया है, **सः देवः कतमः**=वह देव कौन-सा है?

भावार्थ—पुरुष के 'मस्तिष्क, ललाट, ककाटि, कपाल व हनुओं' की रचना में उस अज्ञेय प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर हो रही है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रियाप्रियाणि

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यं ∫ः।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद्वहति पूरुषः ॥ ९ ॥

१. हे पुरुषो! विचारो कि **उग्रः पूरुषः**=तेजस्वी होता हुआ पुरुष **बहुला**=बहुत प्रकार के **प्रियाप्रियाणि**=प्रिय व अप्रिय भावों को, **स्वप्नम्**=स्वप्न को **संबाधतन्द्र्यः**=बाधाओं (पीड़ाओं) व थकानों को **आनन्दान्**=आनन्दों को **च नन्दान्**=और समृद्धियों को **कस्मात् वहति**=किस कारण से प्राप्त करता है?

भावार्थ—किस देव की अधीनता में तेजस्वी-से-तेजस्वी पुरुष भी प्रिय व अप्रिय कर्मफलों को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आर्ति-उदिति

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥

१. **पुरुषे**=इस पुरुष में **आर्तिः**=पीड़ा, **अवर्तिः**=दरिद्रता—वृत्ति का न चलना, **निर्ऋतिः**=कृच्छ्रापत्ति (नि० २।७) कष्ट और **अमतिः**=अज्ञान व कुमति **कुतः नु**=कहाँ से आ जाते हैं। २. इसीप्रकार **राद्धिः**=सिद्धि, **समृद्धिः**=सम्पत्ति **अव्यृद्धिः**=अन्यूनता (विशेष सम्पत्ति का भाव), **मतिः**=बुद्धि, तथा **उदितयः**=उत्थान की क्रियाएँ **कुतः**=कहाँ से होती हैं?

भावार्थ—मनुष्य को कभी पीड़ा, कभी सफलता व कभी उत्थान—ये सब किस परमपुरुष की व्यवस्था में प्राप्त होते हैं?

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'रुधिर' रूप अद्भुत जल

को अस्मिन्नापो व्य ∫ दधाद्विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११ ॥

१. **अस्मिन् पुरुषे**=इस पुरुष-शरीर में **आपः**=रुधिररूप द्रवों को **कः व्यदधात्**=किसने

बनाया है, जोकि **विषूवृतः**=नाना प्रकार से देह में घूमते हैं, **पुरूवतः**=(पृ पालनपूरणयोः) पालन व पूरण करने के दृष्टिकोण से घूमनेवाले, **सिन्धुसृत्याय जाताः**=नाड़ीरूप सिन्धुओं में गति करने के योग्य हो गये हैं। २. ये रुधिरद्रव **तीव्राः**=तीव्र गतिवाले **अरुणाः**=लाल रंगवाले **लोहिनीः**=लोह धातु को साथ ले-जानेवाले, **ताम्रधूम्राः**=तांबे के धूएँ के समान रंगवाले, **ऊर्ध्वा अवाचीः तिरश्चीः**=ऊपर, नीचे व तिरछे चलनेवाले हैं।

भावार्थ—नाड़ियों में प्रवाहित होनेवाले इस अद्भुत रुधिर का निर्माण किसने किया है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रूपं चरित्रं

को अस्मिन्रूपमदधात्को महानं च नाम च।
गातुं को अस्मिन्कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे॥ १२॥

१. **कः**=कौन **अस्मिन् पूरुषे**=इस पुरुष में **रूपं अदधात्**=रूप को स्थापित करता है? **च**=और **कः**=कौन **महानं नाम च**=महिमा और नाम को स्थापित करनेवाला है? **कः**=कौन **अस्मिन्**=इस पुरुष में **गातुम्**=गीत को, शब्द को स्थापित करता है? **कः केतुम्**=कौन ज्ञान को, **कः च**=और कौन **चरित्राणि**=आचरणों को स्थापित करता है?

भावार्थ—पुरुष में 'रूप, महिमा, नाम, शब्द, ज्ञान व चरित्रों' का स्थापन कौन करता है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्राण-समान

को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यानमु।
समानमस्मिन्को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे॥ १३॥

१. **कः**=किस आनन्दमय देव ने **अस्मिन् पूरुषे**=इस पुरुष में **प्राणम्**=प्राणवायु को **अवयत्**=बुना है। **कः**=किसने **अपानम्**=अपान को **उ**=और **व्यानम्**=सर्वशरीरगामी व्यानवायु को प्रवाहित किया है? २. **अस्मिन्**=इसमें **कः देवः**=किस दिव्य परमपुरुष प्रभु ने **समानम्**=समानवायु को **अधि शिश्राय**=अधिश्रित किया है?

भावार्थ—इस पुरुष में प्राणादि अवयवों का स्थापक पुरुष कितना अद्भुत स्रष्टा है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञ-अमृत

को अस्मिन्यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम्॥ १४॥

१. **कः**=कौन **एकः देवः**=अद्वितीय देव **अस्मिन् पूरुषे अधि**=इस पुरुष में **यज्ञं अदधात्**=यज्ञ को स्थापित करनेवाला हुआ? **कः**=किसने **अस्मिन्**=इसमें **सत्यम्**=सत्य को **कः**=और किसने **अनृतम्**=असत्य को स्थापित किया है? **कुतः मृत्युः**=कहाँ से यह मृत्यु आती है, और **कुतः अमृतम्**=कहाँ से नीरोगता की स्थापना होती है?

भावार्थ—'यज्ञ, सत्य, अनृत, मृत्यु व अमृत' का संस्थापक देव कौन है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वासः-जवः

को अस्मै वासः पर्यदधात्को अस्यायुरकल्पयत्।
बलं को अस्मै प्रायच्छत्को अस्याकल्पयज्जवम्॥ १५॥

१. **कः**=कौन **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **वासः पर्यदधात्**=देहरूप वस्त्र को धारण कराता है? **कः**=कौन **अस्य**=इस पुरुष के **आयुः अकल्पयत्**=आयुकाल को नियत करता है? **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **बलम्**=बल को **कः प्रायच्छत्**=कौन देता है? **कः**=कौन **अस्य**=इसके **जवम्**=वेग व क्रिया-सामर्थ्य को **अकल्पयत्**=रचता है?

भावार्थ—किस अद्भुत देव ने हमें शरीररूप वस्त्र, आयु, बल व वेग को प्राप्त कराया है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आपः-अहः

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद्रुचे।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे॥ १६॥

१. **केन**=किससे **आपः**=ये जल अथवा शरीरस्थ वीर्यकण **अन्वतनुत**=अनुकूलता से विस्तृत किये गये हैं? **केन**=किसने **रुचे**=प्रकाश के लिए **अहः**=दिन व सूर्य को **अकरोत्**=बनाया है? **केन**=किसने **उषसम्**=उषाकाल को **अन्वैन्द्ध**=पुरुष के अनुकूल दीप्त किया है और **केन**=किसने **सायंभवं ददे**=सायंकाल को दिया है?

भावार्थ—किस अनुपम देव ने 'जलों, दिनों, उषाओं व सायंकालों' का निर्माण किया है?

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रेतः-नृतः

को अस्मिन्रेतो न्य ∫ दधात्तन्तुरा तायतामिति।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत्को बाणं को नृतौ दधौ॥ १७॥

१. **अस्मिन्**=इस पुरुष-देह में **रेतः**=वीर्य को **कः**=कौन देव **न्यदधात्**=निहित करता है, **तन्तुः आतायताम् इति**=जिससे इस पुरुष का प्रजातन्तु फैल सके? शरीर में वीर्य स्थापन का मुख्य उद्देश्य यही है कि प्रजातन्तु का विस्तार हो सके। २. **मेधाम्**=मेधा बुद्धि को **अस्मिन्**=इस पुरुष में **कः**=कौन **अधि औहत्**=धारण करता है? **कः बाणम्**=कौन वाक्शक्ति को और **कः**=कौन **नृतः**=हाथ-पैर आदि की चेष्टाओं को **दधौ**=स्थापित करता है?

भावार्थ—प्रजातन्तु के विस्तार के लिए प्रभु ने शरीर में रेतस् की स्थापना की है। साथ ही 'मेधा, वाक्शक्ति व चेष्टाओं' को स्थापित किया है। प्रत्येक कार्य पहले बुद्धि में, फिर वाणी में और तदनन्तर हाथ-पैर आदि की चेष्टाओं में उपस्थित होता है—**'यन्मनसा मनुते, तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति'**। ये सब किस अनुपम देव ने बनाये हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भूमि-द्युलोक

केनेमां भूमिमौर्णोत्केन पर्यभवद्दिवम्।
केनाभि मह्ना पर्वतान्केन कर्माणि पूरुषः॥ १८॥

१. **पूरुषः**=उस परमपुरुष ने **केन मह्ना**=किस अद्भुत सामर्थ्य से **इमां भूमिं और्णोत्**=इस भूमि को आच्छादित किया है—बिछा-सा दिया है? **केन**=किस सामर्थ्य से **दिवं परि अभवत्**=द्युलोक को समन्तात् व्याप्त किया हुआ है? **केन**=किस अद्भुत सामर्थ्य से **पर्वतान्**=पर्वतों को और **केन**=किस सामर्थ्य से **कर्माणि**=सब कर्मों को **अभि**=(अभवत्) अभिभूत—वशीभूत किया हुआ है?

भावार्थ—उस परमपुरुष ने भूमि को अपनी महिमा से बिछा-सा दिया है और द्युलोक

को व्याप्त किया हुआ है। उसी ने पर्वतों व सब कर्मों को वशीभूत किया हुआ है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पर्जन्य-सोम

केन॑ प॒र्जन्य॒मन्वे॑ति॒ केन॒ सोमं॑ विचक्ष॒णम्।
केन॑ य॒ज्ञं च॑ श्र॒द्धां च॒ केनाऽस्मि॒न्निहि॑तं मनः॥ १९॥

१. **केन**=किस अद्भुत देव द्वारा यह पुरुष **निहितम्**=अन्तरिक्ष में स्थापित किये हुए **पर्जन्यम्**=मेघ को **अनु एति**=लगातार—प्रतिवर्ष प्राप्त करता है? **केन**=किसके द्वारा शरीर में स्थापित किये गये **विचक्षणम्**=विशिष्ट प्रकाशवाले **सोमम्**=वीर्य को प्राप्त करता है? शरीर में यह सोम ही ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर जीवन को प्रकाशमय बनाता है, यह सोम विचक्षण है। २. **केन**=किस देव के द्वारा स्थापित **यज्ञं च श्रद्धां च**=यज्ञ और श्रद्धा को प्राप्त करता है? और **केन**=किससे **अस्मिन्**=इस देह में **निहितं मनः**=रक्खे हुए मन को अनुकूलता से प्राप्त करता है?

भावार्थ—प्रभु ने मानव-हित के लिए पर्जन्यों का निर्माण करके अन्न को सम्भव किया है (पर्जन्यादन्नसम्भवः)। प्रभु ने इस अन्न द्वारा शरीर में सोम की स्थापना की है। सुरक्षित सोम यज्ञ और श्रद्धा का मूल बनता है और मानसशक्ति का विकास करता है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'ब्रह्म (ज्ञान) का महत्त्व'

केन॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ केने॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म्। केने॒ममग्निं॑ पूरु॒षः केन॑ संवत्स॒रं मम॑े॥ २०॥
ब्रह्म॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ ब्रह्मे॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म्। ब्रह्मे॒ममग्निं॑ पूरु॒षो ब्रह्म॑ संवत्स॒रं मम॑े॥ २१॥

१. **केन**=किस हेतु से **श्रोत्रियम् आप्नोति**=वेदज्ञ आचार्य को प्राप्त करता है, **केन**=किससे **इमम्**=इस **परमेष्ठिनम्**=परम स्थान में स्थित प्रभु को प्राप्त करता है? और **पूरुषः**=पुरुष **केन**=किससे **इमं अग्निम्**=इस अग्नि को **ममे**=मापता है—जान पाता है? **केन**=किससे **संवत्सरम्**=काल को मापता है? २. इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **ब्रह्म**=ज्ञान ही **श्रोत्रियम् आप्नोति**=श्रोत्रिय को प्राप्त करता है, अर्थात् ज्ञान के हेतु से ही मनुष्य श्रोत्रिय के समीप जाता है। **ब्रह्म इमं परमेष्ठिनम्**=ज्ञान ही इस परमेष्ठी को प्राप्त करता है। ज्ञान के द्वारा ही प्रभु की प्राप्ति होती है। **पूरुषः**=पुरुष **ब्रह्म इमं अग्निं ममे**=ज्ञान के द्वारा इस अग्नि को मापनेवाला होता है और **ब्रह्म संवत्सरं ममे**=ज्ञान ही काल को मापता है। मनुष्य ज्ञान द्वारा ही यज्ञिय अग्नि के महत्त्व को व कालचक्र की गति को जान पाता है।

भावार्थ—ज्ञान के हेतु से मनुष्य वेदज्ञ आचार्य को प्राप्त करता है। प्राप्त ज्ञान से प्रभु को प्राप्त करता है। ज्ञान से ही यज्ञिय अग्नि में यज्ञादि कर्मों को करता है और कालचक्र की गति को समझता हुआ समय पर कार्यों को करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**नारायणः** ॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

न-क्षत्रं=सत् क्षत्रम्

केन॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ केन॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑। केने॒दम॒न्यन्न॑क्ष॒त्रं केन॒ सत्क्ष॒त्रमु॑च्यते॥ २२॥
ब्रह्म॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ ब्रह्म॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑। ब्रह्मे॒दम॒न्यन्न॑क्ष॒त्रं ब्रह्म॒ सत्क्ष॒त्रमु॑च्यते॥ २३॥

१. **केन**=किस सामर्थ्य से मनुष्य **देवान् अनु क्षियति**=देवों के साथ निवास करता है—दिव्य गुणों को अपने में बढ़ानेवाला बनता है? **केन**=किस सामर्थ्य से **दैवजनीः विशः**=प्रभु से उत्पादित प्रजाओं के साथ अनुकूलता से निवास कर पाता है? **केन अन्यत्**=किससे भिन्न—

रहित होकर **इदम्**=यह **न-क्षत्रम्**=क्षतों से अपना त्राण करनेवाला नहीं होता, और **केन**=किसके द्वारा **सत् क्षत्रम्**=उत्तम बलस्वरूप (क्षत्रों से अपना त्राण करनेवाला) **उच्यते**=कहा जाता है। २. **ब्रह्म देवान् अनु क्षियति**=ज्ञान से यह पुरुष देवों के साथ निवास करता है। **ब्रह्म दैवजनीः विशः (अनुक्षियति)**=ज्ञान द्वारा देव से उत्पादित प्रजाओं के साथ अनुकूलता से निवास करता है। **ब्रह्म अन्यत्**=ब्रह्म से रहित **इदं नक्षत्रम्**=यह निर्वीर्य है। **ब्रह्म**=ज्ञान ही **सत् क्षत्रम्**=उत्तम बल **उच्यते**=कहा जाता है।

भावार्थ—ज्ञान से दिव्यगुणों का विकास होता है। ज्ञान से मनुष्य सब प्रजाओं के साथ अनुकूलतापूर्वक निवास करता है। ज्ञानशून्यता ही निर्वीर्यता है। ज्ञान ही उत्कृष्ट बल है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भूमिः, द्यौः, अन्तरिक्षम्

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता। केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥ २४॥
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता। ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥ २५॥

१. **केन**=किसने **इयं भूमिः**=यह पृथिवीलोक **विहिता**=बनाया है? **केन**=किसने **उत्तरा द्यौः**=यह द्युलोक ऊपर **हिता**=स्थापित किया है? **केन**=किसने **ऊर्ध्वम्**=ऊपर **तिर्यक् च**=और तिरछा—एक सिरे से दूसरे सिरे तक **व्यचः**=फैला हुआ (विस्तारवाला) **इदं अन्तरिक्षं हितम्**=यह अन्तरिक्ष स्थापित किया है? २. **ब्रह्मणा भूमिः विहिता**=ब्रह्म ने इस पृथिवीलोक को बनाया है। **ब्रह्म**=प्रभु ने ही **उत्तरा द्यौः हिता**=द्युलोक को ऊपर स्थापित किया है। **ब्रह्म**=प्रभु ने ही **ऊर्ध्वम्**=ऊपर **तिर्यक् च**=और तिरछे—एक सिरे से दूसरे सिरे तक **व्यचः**=विस्तृत **इदं अन्तरिक्षम्**=यह अन्तरिक्ष **हितम्**=स्थापित किया हैं।

भावार्थ—प्रभु ही इस ब्रह्माण्ड की त्रिलोकी के निर्माता है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मूर्धानं हृदयं संसीव्य

मूर्धानमस्य संसीव्यार्थर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः॥ २६॥

१. **अथर्वा**=(अ-थर्व) स्थिरवृत्ति का मनुष्य अथवा आत्मनिरीक्षण करनेवाला मनुष्य (अथ अर्वाङ्) **यत्**=जब **अस्य**=इस देह के **मूर्धानं हृदयं च**=मस्तिष्क व हृदय को **संसीव्य**=सीकर, अर्थात् ज्ञान और श्रद्धा का परस्पर मेल करके **मस्तिष्कात्**=मस्तिष्क (brain, ज्ञान) के द्वारा अपने को **ऊर्ध्वः प्रैरयत्**=ऊपर प्रेरित करता है। श्रद्धा-विरहित ज्ञान उत्थान का हेतु न होकर अवनति का कारण बन जाता है। २. तब **शीर्षतः अधि**=(अधि पञ्चम्यर्थानुवादी) यह अथर्वा सिर से **पवमानः**=अपने को पवित्र करनेवाला बनता है—ज्ञान इसकी पवित्रता का हेतु होता है।

भावार्थ—हम स्थिर-वृत्तिवाले व आत्मनिरीक्षण की वृत्तिवाले बनें। अपने जीवन में ज्ञान व श्रद्धा का समन्वय करें। यह श्रद्धा-समन्वित ज्ञान हमारे उत्थान का कारण बनेगा। यह हमें पवित्र बनाएगा।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देवकोशः समुब्जितः

तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥ २७॥

१. **तत्**=तब जबकि अथर्वा मूर्धा व हृदय को सी लेता है, **वै**=निश्चय से **अथर्वणः**=इस अथर्वा का **शिरः**=मस्तिष्क **देवकोशः**=देवों का कोष बनता है। तब यह **सम् उब्जितः**=सम्यक् वशीभूत रहता है (keep under, check, subdue)। श्रद्धा के अभाव में मस्तिष्क व्यर्थ के तर्क करता हुआ जीवन को अप्रतिष्ठित-सा कर देता है। २. **तत्**=उस **शिरः**=मस्तिष्क को **अथो**=और **मनः**=मन को **प्राणः**=प्राण और **अन्नम्**=अन्न **अभिरक्षति**=सम्यक् रक्षित करते हैं, अर्थात् मस्तिष्क व मन के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि प्राणसाधना की जाए तथा सात्त्विक अन्न का सेवन हो।

भावार्थ—हम प्राणसाधना व सात्त्विक अन्न के सेवन द्वारा मन व मस्तिष्क को सुरक्षित करेंगे तो इन दोनों के समन्वय से हमारा मस्तिष्क देवकोश बनेगा—ज्ञान का भण्डार बनेगा। यह संयत रहेगा, व्यर्थ के तर्कों से जीवन को अप्रतिष्ठित करनेवाला न होगा। श्रद्धा इसे वश में रक्खेगी।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती**॥

ऊर्ध्व, तिर्यकः, सर्वाः दिशः

ऊ॒र्ध्वो नु सृ॒ष्टा३॑स्ति॒र्यङ् नु सृ॒ष्टा३ः सर्वा॒ दिश॒ः पुरु॑ष॒ आ ब॑भूवाँ३।
पु॒रं॒ यो ब्रह्म॑णो॒ वेद॒ यस्या॒ः पुरु॑ष उ॒च्यते॥ २८॥

१. **नु**=निश्चय से वह प्रभु **ऊर्ध्वः सृष्टाः**=ऊपर (ascertained=obtained, certain knowledge of) ज्ञात होते हैं—ऊपर द्युलोक के एक-एक पिण्ड में प्रभु की महिमा प्रकट होती है। **तिर्यक् नु सृष्टाः**=निश्चय से एक किनारे से दूसरे किनारे तक (**तिर्यक्**=crosswise) उस प्रभु का निश्चय होता है। कहीं देखो, सर्वत्र उस प्रभु की महिमा दिखती है। **सर्वाः दिशः**=सब दिशाओं में **पुरुषः आबभूव**=वह पुरुष व्याप्त हो रहा है। '**यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः**'—'पर्वत, समुद्र, पृथिवी'—सब उस प्रभु की महिमा का प्रतिपादन कर रहे हैं। २. **यः**=(यम्+उ) संयमी पुरुष ही **ब्रह्मणः पुरं वेद**=ब्रह्म की इस नगरी को जान पाता है, **यस्याः पुरुषः उच्यते**=जिस कारण से ये ब्रह्म पुरुष कहलाते हैं—'पुरि वसति'=पुरी में रहनेवाले हैं। ब्रह्माण्ड प्रभु का पुर है, इसमें वे प्रभु सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—वे प्रभु ऊपर द्युलोक के पिण्डों में अपनी महिमा से प्रकट हो रहे हैं। एक सिरे से दूसरे सिरे तक सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में प्रभु की महिमा प्रकट है। सब दिशाओं में वे व्याप्त हो रहे हैं। संयमी पुरुष ही उस ब्रह्म की ब्रह्माण्डरूप पुरी को जान पाता है। इस पुरी में निवास के कारण ही तो प्रभु 'पुरुष' कहलाते हैं।

सूचना—यहाँ 'सृष्टाः३' आदि में 'विचार्यमाणानाम्' इस सूत्र से 'टि' को प्लुत हुआ है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चक्षु, प्राण, प्रजा

यो वै तां ब्रह्म॑णो॒ वेदा॒मृते॒नावृ॑तां॒ पुर॑म्।
तस्मै॒ ब्रह्म॑ च ब्रा॒ह्माश्च॒ चक्षु॑ः प्रा॒णं प्र॒जां द॑दुः॥ २९॥

१. **यः**=जो पुरुष **वै**=निश्चय से **अमृतेन आवृताम्**=नीरोगता से आच्छादित, अर्थात् पूर्ण नीरोग **ताम्**=उस शरीर-नगरी को **ब्रह्मणः वेद**=ब्रह्म का जानता है, अर्थात् जो यह समझ लेता है कि यह शरीर उस प्रभु का है, **तस्मै**=उस ज्ञानी पुरुष के लिए **ब्रह्म च ब्राह्माः च**=प्रभु व प्रभु से उत्पादित ये सूर्यादि देव **चक्षुः प्राणं प्रजाम्**=चक्षु आदि इन्द्रियशक्तियों, प्राणशक्ति व उत्तम

सन्तान को **ददुः**=देते हैं।

भावार्थ—जो इस शरीर को ब्रह्म का समझता है, वह पूर्ण प्रयत्न से इसे स्वस्थ रखने के लिए यत्नशील होता है। प्रभुकृपा से इसे उत्तम इन्द्रियाँ, प्राणशक्ति व उत्तम प्रजा प्राप्त होती है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'स्वस्थ दीर्घ जीवन'

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ ३०॥

१. **यः**=(यम्+उ) जो संयमी पुरुष **पुरम्**=इस शरीर-नगरी को **ब्रह्मणः वेद**=ब्रह्मा की जानता है, इसे प्रभु की ही धरोहर समझता है, **यस्याः**=जिससे वह प्रभु **पुरुषः उच्यते**=पुरुष—पुरी में निवास करनेवाले कहे जाते हैं, **तम्**=उस संयमी पुरुष को **वै**=निश्चय से **चक्षुः न जहाति**=आँख आदि इन्द्रियाँ छोड़ नहीं जातीं—उसकी सब इन्द्रियाँ ठीक बनी रहती हैं, **प्राणः**=प्राण भी उसे **जरसः पुरा**=पूर्ण वृद्धावस्था से पूर्व **न**=नहीं छोड़ जाता, अर्थात् वह पूर्ण दीर्घायुष्य प्राप्त करता है।

भावार्थ—संयमी बनकर जब हम इस शरीर-नगरी को प्रभु का समझकर इसका पूरा ध्यान व आदर करते हैं तब हम स्वस्थ व दीर्घ जीवन को प्राप्त करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देवानाम् पूः

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१॥

१. यह शरीररूप **पूः**=नगरी **देवानाम्**=सब सूर्यादि देवों की अधिष्ठानभूत है, **'सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते'**—(सूर्यः चक्षुर्भूत्वा० अग्निर्वाग्भूत्वा०, वायुः प्राणो भूत्वा०, चन्द्रमा मनो भूत्वा०)। **अष्टाचक्रा**=इसमें 'मूलाधार' से लेकर 'सहस्रार' तक आठ चक्र—'मूलाधार' (मेरुदण्ड के मूल में), इसके ऊपर 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपूरक' (नाभि में), 'अनाहत' (हृदय में) 'विशुद्धि' (कण्ठ में), 'ललना' (जिह्वा मूल में) 'आज्ञाचक्र' (भ्रूमध्य में) 'सहस्रारचक्र' (मस्तिष्क में) हैं। **नवद्वारा**=नौ इन्द्रिय-द्वारोंवाली यह नगरी **अयोध्या**=शत्रुओं से युद्ध में न जीतने योग्य है। सूर्य का सन्ताप इस नगरी के एक-एक छिद्र से बाहर आये हुए पसीने के रूप में जलकण को वाष्पीभूत कर सकता है, परन्तु नगरी के अन्दर उपद्रव पैदा नहीं कर पाता।

२. **तस्याम्**=उस नगरी में एक **हिरण्ययः**=हितरमणीय **कोशः**=कोश है, जिसे 'मनोमय' कोश कहते हैं। यह **स्वर्गः**=आनन्दमय है, **ज्योतिषा आवृतः**=ज्योति से आवृत है। हम इसे राग-द्वेष आदि से मलिन न कर दें, तो यह चमकीला-ही-चमकीला है—यहाँ आह्लाद-ही-आह्लाद है, यह प्रभु की ज्योति से ज्योतिर्मय है।

भावार्थ—आठ चक्रोंवाली, नौ इन्द्रियाँ-द्वारोंवाली इस शरीररूप अयोध्या नामक देवनगरी में एक ज्योतिर्मय मनोमयकोश है, जो आह्लाद व प्रकाश से परिपूर्ण है। इसे हम राग-द्वेष से मलिन न करें।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**साक्षाद् ब्रह्मप्रकाशिन्यौ**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठित कोश'

तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्य ∫ रे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥

१. **तस्मिन्**=उस **त्र्यरे**='सत्त्व, रजस् व तमस्' रूप तीन अरोंवाले, **त्रिप्रतिष्ठिते**='ज्ञान, कर्म, उपासना' में प्रतिष्ठित **हिरण्यये कोशे**=ज्योतिर्मयकोश में; **तस्मिन्**=उसी मनोमयकोश में **यत्**=जो **आत्मन्वत्**=सदा जीवित (animate, alive) **यक्षम्**=पूजनीय सत्ता है, **तत्**=उस सत्ता को **वै**=निश्चय से **ब्रह्मविदः**=ज्ञानी पुरुष ही **विदुः**=जानते हैं।

भावार्थ—प्रभु का निवास इस मनोमयकोश में है। तम व रज से ऊपर उठकर जब यहाँ सत्त्व की प्रधानता होती है, तब उस सदा चैतन्य, पूजनीय सत्ता का यहाँ दर्शन होता है। एक ज्ञानीपुरुष इसे 'ज्ञान, कर्म व उपासना' में प्रतिष्ठित करता है और इसमें प्रभु को देखने का प्रयत्न करता है।

ऋषिः—**नारायणः**॥ देवता—**पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभ्राजमाना-अपराजिता

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥ ३३॥

१. जिस समय हम इस शरीर-नगरी को पूरी तरह से स्वस्थ रखने का प्रयत्न करते हैं तब यह अन्नमयकोश में '**प्रभ्राजमानाम्**'=तेजस्विता से दीप्त होती है (भ्राजृ दीप्तौ)। यह प्राणमयकोश में प्राणशक्तिपूर्ण होने से **हरिणीम्**=सब दुःखों को हरण करनेवाली होती है। इसमें रोगों का प्रवेश नहीं होता। मनोमयकोश में यह **यशसा संपरीवृतानाम्**=सब यशस्वी—प्रशस्त भावनाओं से पूर्ण होती है। विज्ञानमयकोश में यह **हिरण्ययीम्**=हितरमणीय ज्ञानज्योति से परिपूर्ण होती है और आनन्दमयकोश में **अपराजिताम्**=किन्हीं भी अशुभ आसुर भावनाओं से पराजित नहीं होती। यह कोश 'सहस्' वाला है—शत्रुकषर्ण शक्तिवाला है, अतएव आनन्दमय है। इस नगरी में **ब्रह्म आविवेश**=प्रभु का प्रवेश होता है, अर्थात् यहाँ प्रभु का दर्शन होता है।

भावार्थ—हम इस शरीर-नगरी को 'प्रभ्राजमाना, हरिणी, यशःसंपरीवृता, हिरण्ययी व अपराजिता' बनाएँ। इसमें हमें प्रभु का दर्शन होगा।

गतमन्त्र के अनुसार इस शरीर-नगरी को 'प्रभ्राजमाना' बनाने की कामनावाला व्यक्ति 'अथर्वा' (अथ अर्वाङ्) आत्मनिरीक्षण की वृत्तिवाला बनता है। आत्मनिरीक्षण करता हुआ यह शरीर में वीर्य-रक्षण का पूर्ण प्रयत्न करता है। यह वीर्य उसके लिए 'वरणमणि' बनती है—सब रोग व मलिनताओं का निवारण करनेवाली। यह कहता है कि—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सपत्नक्षयणः वृषा' वरणो मणिः

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून्प्र मृणीहि दुरस्यतः॥ १॥

१. **अयं**=यह **मे**=मेरी **मणिः**=वीर्यमणि **वरणः**=सब रोगों का निवारण करनेवाली है। **सपत्नक्षयणः**=वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाली है। **वृषा**=हममें शक्ति व सुखों का सेचन करनेवाली है। **तेन**=उस वरण-मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **शत्रून् आरभस्व**=रोगादि शत्रुओं को पकड़ ले (sieze, grasp) और इन **दुरस्यतः**=दुष्ट कामनावालों को—अशुभ चाहनेवालों को **प्रमृणीहि**=कुचल दे।

भावार्थ—वीर्य वरणमणि है, यह शत्रुओं का निवारण करनेवाली है। शत्रुओं के निवारण

के द्वारा यह हममें सुखों का सेचन करनेवाली है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

असुरों के अत्याचार से रक्षण

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः॥ २॥

१. **एनान्**=शत्रुभूत रोगादि को **प्रशृणीहि**=नष्ट कर, **प्रमृण**=कुचल दे, **आरभस्व**=इन्हें निग्रहीत कर ले। यह **ते मणिः**=तेरी वीर्यमणि **पुरस्तात्**=सर्वप्रथम **पुरएता अस्तु**=आगे चलनेवाली हो, अर्थात् यह मणि ऊर्ध्व गतिवाली बने। २. **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **वरणेन**=इस वरणमणि के द्वारा—रोगों का निवारण करनेवाली मणि के द्वारा **असुराणाम्**=असुरों के **श्वः श्वः**=कल-कल होनेवाले **अभ्याचारम्**=आक्रमणों को **अवारयन्त**=रोकते हैं। इस वीर्यमणि के रक्षण से आसुरभावों का आक्रमण नहीं होता।

भावार्थ—हम शरीर में वीर्यमणि को प्रथम स्थान देनेवाले बनें। यह हमें रोगों व आसुरभावों के आक्रमण से बचाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

हरितः हिरण्ययः

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान्पादयाति पूर्वस्तान्दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति॥ ३॥

१. **अयं मणिः**=यह वीर्यमणि **वरणः**=रोगों का निवारण करनेवाली है, **विश्वभेषजः**=सब रोगों का औषध है। **सहस्राक्षः**=हज़ारों आँखोंवाली है—सहस्रों प्रकार से हमारा ध्यान करनेवाली है। **हरितः**=सिंह के समान तेजस्वी है—रोगों को नष्ट कर डालनेवाली है। **हिरण्ययः**=ज्योतिर्मय है—ज्ञानाग्नि को दीप्त करनेवाली है। २. **सः**=वह मणि **ते शत्रून्**=तेरे शत्रुओं को **अधरान् पादयाति**=पाँव तले रौंद डालती है। **पूर्वः**=(पॄ पालनपूरणयोः) इस मणि का पालन व पूरण करनेवाला तू **तान्**=उन सब शत्रुओं को **दभ्नुहि**=हिंसित कर डाल, **ये त्वा द्विषन्ति**=जो तेरे साथ द्वेष करते हैं—तेरे प्रति प्रीतिवाले नहीं हैं।

भावार्थ—यह वीर्यमणि विश्वभेषज है। यह वीरता व ज्योति की वर्धक है। इसके रक्षण द्वारा हम रोग व वासनारूप शत्रुओं को कुचल दें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'कृत्या, भय व पाप' का निवारण

अयं तं कृत्यां विततां पौरुषेयाद्भयं भयात्।
अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्वरणो वारयिष्यते॥ ४॥

१. **अयम्**=यह वीर्यरूप **वरणः**=वरणमणि **ते**=तेरे **वितताम् कृत्याम्**=विस्तृत 'छेदन-भेदन' को **वारयिष्यते**=रोक देगी। **अयम्**=यह मणि **पौरुषेयात् भयात्**=पुरुषों में प्राप्त होनेवाले भय से रोकेगी। २. **अयं (वरुणः) मणिः**=यह वरणमणि **त्वा**=तुझे **सर्वस्मात् पापात्** (वारयिष्यते)=सारे पापों से रोकेगी।

भावार्थ—यह वीर्यमणि 'छेदन-भेदन, पुरुष में प्राप्त होनेवाले भय व पाप' का निवारण करने से 'वरण' इस अन्वर्थ नामवाली है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देवः वनस्पतिः

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्॥ ५॥

१. **वरणः**=ये वीर्यरूप वरणमणि **वारयाते**=सब रोगों का निवारण करती है। **अयं देवः**=यह रोगों को जीतने की कामनावाली है। **वनस्पतिः**=यह सेवनीय वस्तुओं की रक्षक है (वन् संभक्तौ)। २. **यः**=जो **यक्ष्मः**=रोग **अस्मिन् आविष्टः**=इस शरीर में प्रविष्ट हो गया है, **तम् उ**=उसे निश्चय से **देवाः**=विजिगीषु लोग (दिव् विजिगीषायाम्) **अवीवरन्**=इसके द्वारा रोकते हैं।

भावार्थ—वीर्यमणि रोगों का निवारण करने से 'वरण' है। यह रोगों को जीतने की कामनावाली होने से 'देव' है। संभजनीय तत्त्वों के रक्षण से यह 'वनस्पति' है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

अशुभ स्वप्न व अपशकुन

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते॥ ६॥

१. **स्वप्नं सुप्त्वा**=नींद में जाकर (सोकर) यदि **पापं पश्यासि**=यदि तू अशुभ को देखता है, और **मृगः**=कोई आरण्य पशु **यति**=जितना **अजुष्टाम् सृतिं धावात्**=अप्रीतिकर मार्गों में गति करे—रास्ता काट जाए तो इन अपशुकनों से तथा **शकुनेः**=पक्षी के **परिक्षवात्**=नथुनों के फरफराहट से व **पापवादात्**=अमङ्गल शब्दों से **अयम्**=यह **वरणः मणिः**=वीर्यरूप वरणमणि **वारयिष्यते**=तुझे बचाएगा। २. यह वीर्यरूप मणि शरीर में सुरक्षित होने पर अशुभ स्वप्नों से बचाती है। साथ ही यह हृदय को दृढ़ करके अपशकुनों का हृदय पर भयजनक प्रभाव नहीं पड़ने देती।

भावार्थ—वीर्यमणि के शरीर में सुरक्षित होने पर शरीर के स्वस्थ होने से अशुभ स्वप्न नहीं आते, न ही मन के दृढ़ होने से पशु-पक्षियों के शब्दों व गतियों में अपशकुन का भय होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अराति, निर्ऋति, अभिचार, भय व वध' से रक्षण

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणो वारयिष्यते॥ ७॥

१. **वरणः**=यह सब बुराइयों का निवारण करनेवाली वीर्यमणि **त्वा**=तुझे **अरात्याः**=अदानवृत्ति से—कृपणता से **वारयिष्यते**=बचाएगी। **निर्ऋत्याः**=दुराचरण से बचाएगी, **अभिचारात्**=रोगादि के आक्रमण से—अभिचार कर्मों से **अथो**=और **भयात्**=अन्य भयों से बचाएगी तथा **मृत्योः ओजीयसः वधात्**=मृत्यु के अति प्रबल वध से यह तुझे बचाएगी।

भावार्थ—वीर्य-रक्षण हमें 'कृपणता, दुरवस्था, रोगों के आक्रमण' भय तथा असमय की मृत्यु' से बचाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

पापवारक—'वरण' मणिः

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम्।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः॥ ८॥

१. **यत् एनः**=जिस पाप को **मे माता**=मेरी माता ने, **यत् मे पिता**=जिसे मेरे पिता ने, **यत् च मे भ्रातरः स्वाः**=और जिसे मेरे भाइयों व बन्धुओं ने, **यत् (एना) वयं चकृम**=जिस पाप को हमने स्वयं किया है, **ततः**=उस सबसे **अयम्**=यह **देवः**=सब अशुभों को जीतने की कामनावाला **वनस्पतिः**=संभजनीय तत्त्वों का रक्षक वरणमणि (वीर्यरूप मणि) **वारयिष्यते**=बचाएगा।

भावार्थ—यह वीर्यरूप वरणमणि शरीरों में सुरक्षित होने पर 'माता, पिता, भाई, बन्धु व स्वयं हमसे' हो जानेवाले पापों से बचाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सबन्धवः भ्रातृव्याः

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः॥ ९॥

१. **वरणेन**=शरीर में सुरक्षित शत्रुविनाशक वीर्यरूप वरणमणि से **प्रव्यथिता**=भय-संचलित हुए-हुए **मे**=मेरे **भ्रातृव्याः**=शत्रु **सबन्धवः**=अपने बन्धुओंसहित—सब रोग अपने उपद्रवोंसहित, **असूर्तम्**=गतिशून्य **रजः**=लोक की **अपि अगुः**=ओर गये हैं। वीर्यरक्षण द्वारा सब रोग उपद्रवोंसहित जड़ीभूत हो गये हैं। **ते अधमं तमः यन्तु**=वे अधम तम को प्राप्त हों—घने अन्धकार में विलीन हो जाएँ।

भावार्थ—वीर्यरूप वरणमणि के रक्षण से शरीर में आ जानेवाले रोग अपने उपद्रवोंसहित जड़ीभूत होकर विलीन हो जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आयुष्मान् सर्वपूरुषः

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः।
तं माऽयं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः॥ १०॥

१. **अरिष्टः अहम्**=मैं अहिंसित होऊँ—रोगादि शत्रुओं से मैं हिंसित न होऊँ। मैं **अरिष्टगुः**=अहिंसित इन्द्रियों-(गावः इन्द्रियाणि)-वाला बनूँ। मैं **आयुष्मान्**=प्रशस्त दीर्घजीवनवाला, **सर्वपूरुषः**=पूर्ण पुरुष (सर्व=स्वस्थ whole-some) बन सकूँ। २. **तं मा**=उस मुझे **अयम्**=यह **वरणः मणिः**=शत्रुनिवारक वीर्यरूप वरणमणि **दिशः दिशः परिपातु**=सब दिशाओं से रक्षित करे। वीर्यमणि द्वारा सुरक्षित हुआ-हुआ मैं रोगों व वासनारूप शत्रुओं का शिकार न होऊँ।

भावार्थ—मैं वीर्यरूप वरणमणि के रक्षण से रक्षित हुआ-हुआ अहिंसित इन्द्रियोंवाला, प्रशस्त दीर्घजीवनवाला व पूर्ण स्वस्थ पुरुष बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

राजा, देवः, वनस्पतिः

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः।
स मे शत्रून्वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान्॥ ११॥

१. **अयम्**=यह **मे**=मेरा **वरणः**=रोग एवं वासनारूप शत्रुओं का निवारक वीर्यमणि **राजा**=मेरे जीवन को दीप्त करनेवाला है, **देवः**=रोगों को जीतने की कामनावाला है। **वनस्पतिः**=संभजनीय तत्त्वों का रक्षक है। **सा**=वह मणि **उरसि**=छाती में उत्पन्न हो जानेवाले **मे शत्रून्**=मेरे विनाशक रोगरूप शत्रुओं को इसप्रकार **विबाधताम्**=नष्ट करे **इव**=जैसे **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष

दस्यून्=(दसु उपक्षये) विनाशक **असुरान्**=आसुरभावों को विनष्ट करता है।

भावार्थ—वीर्यमणि का रक्षण सब हृद्रोगों का बाधन करनेवाला है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'राष्ट्रं, बलं, पशून् ओजः'

इमं बिभर्मि वरणमायुष्माञ्छतशारदः।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्॥ १२॥

१. **इमम्**=इस **वरणम्**=रोगादि शत्रुओं के वारक वीर्यमणि को **बिभर्मि**=मैं धारण करता हूँ, परिणामतः **आयुष्मान्**=प्रशस्त दीर्घजीवनवाला होता हूँ, **शतशारदः**=सौ वर्ष तक जीनेवाला होता हूँ। **सः**=वह वीर्यरूप वरणमणि **मे**=मेरे **राष्ट्रं च क्षत्रं च**=राष्ट्र व बल को, **पशून् ओजः च**=गौ आदि पशुओं व ओज को **मे दधत्**=मेरे लिए धारण करे। 'पशु' शब्द का अर्थ अग्नि (fire) भी है। तब अर्थ इसप्रकार होगा कि अग्नितत्त्वों व बल को मेरे लिए धारण करे।

भावार्थ—वीर्यरूप वरणमणि का रक्षण करता हुआ मैं प्रशस्त जीवनवाला बनूँ। 'राष्ट्र, बल, अग्नितत्त्व व ओज' को यह मेरे लिए धारण कराए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**१३-१४ पथ्यापङ्क्तिः, १५ षट्पदाजगती**॥

रोगरूप शत्रुओं का भञ्जन

यथा वातो वनस्पतीन्वृक्षान्भनक्त्योजसा।
एवा सपत्नान्मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाऽभि रक्षतु॥ १३॥
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान्प्सातो वनस्पतीन्।
एवा सपत्नान्मे प्साहि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाऽभि रक्षतु॥ १४॥
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्य ∫ र्पिताः।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्य ∫ र्पय
पूर्वाञ्जाताँ उतापरान्वरणस्त्वाऽभि रक्षतु॥ १५॥

१. हे वरणमणे! **यथा**=जैसे **वातः**=तेज वायु **वनस्पतीन्**=बिना फूल के फल देनेवाले पीपल आदि को तथा **वृक्षान्**=अन्य वृक्षों को **ओजसा भनक्ति**=शक्ति से तोड़ डालता है, **एव**=इसी प्रकार **मे**=मेरे **पूर्वान् जातान्**=पहले पैदा हुए-हुए **उत**=और **अपरान्**=पीछे आनेवाले **सपत्नान् भङ्ग्धि**=रोगरूप शत्रुओं को विदीर्ण कर दे। २. **यथा**=जैसे **वातः च अग्निः च**=वायु और अग्नि **वनस्पतीन्**=वनस्पतियों को व **वृक्षान्**=वृक्षों को **प्सातः**=खा जाते हैं, **एव**=उसी प्रकार **मे**=मेरे **पूर्वान् जातान् उत अपरान्**=पहले पैदा हुए-हुए और पिछले **सपत्नान्**=शत्रुओं को खा डाल। ३. **यथा**=जैसे **वातेन**=तीव्र वायु से **प्रक्षीणाः**=पत्तों आदि के गिर जाने से क्षीण हुए **न्यर्पिताः**=नीचे अर्पित किये गये—गिराये गये **वृक्षाः**=वृक्ष **शेरे**=भूमि पर लेट जाते हैं—गिर जाते हैं, **एव**=इसी प्रकार हे वरणमणे! **त्वम्**=तू **मम**=मेरे **सपत्नान्**=रोगरूप शत्रुओं को **प्रक्षिणीहि**=क्षीण कर दे और उन्हें **न्यर्पय**=नीचे दबा देनेवाला हो। तेरे द्वारा मैं रोगों को पादाक्रान्त कर पाऊँ। ४. प्रभु अपने आराधक से कहते हैं कि **वरणः**=यह वरणमणि **त्वा अभि रक्षतु**=तेरे शरीर व मन दोनों क्षेत्रों को रक्षित करनेवाली हो। शरीर में यह तुझे रोगों से बचानेवाली हो तथा मन में वासनाओं से रक्षित करनेवाली हो।

भावार्थ—वरणमणि रोग व वासनारूप शत्रुओं को इसप्रकार विनष्ट कर दे जैसेकि तीव्रवायु वृक्षों को। जिस प्रकार जंगल की आग वनस्पतियों को खा जाती है, इसी प्रकार यह वरणमणि रोगों को खा जाए। जैसे तीव्र वायु से वृक्ष गिर जाते हैं, उसी प्रकार इस वरणमणि द्वारा मेरे रोग समाप्त हो जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

पुरा दिष्टात्, पुरा आयुषः

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात्पुरायुषः।
य एनं पशुषु दिप्संन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः॥ १६॥

१. हे **वरण**=शत्रुओं का निवारण करनेवाली वीर्यमणे! **ये एनम्**=जो इस **पशुषु**=शरीरस्थ अग्नियों को **दिप्सन्ति**=हिंसित करना चाहते हैं, **ये च**=और जो **अस्य**=इसके **राष्ट्रदिप्सवः**=शरीररूप राष्ट्र को ही हिंसित करना चाहते हैं, **तान्**=उन्हें **त्वम्**=तू **प्रच्छिन्द्धि**=छिन्न-भिन्न कर डाल। **दिष्टात् पुरा**=नियति से पूर्व ही तू उसे समाप्त कर दे, **पुरा आयुषः**=जीवन के पूर्ण होने से पूर्व ही तू उन्हें समाप्त कर दे। २. 'रोग अपना पूरा समय लेकर जाए', इसकी बजाए उसे यह वरणमणि पहले ही समाप्त करनेवाली बने, उसे आरम्भ में ही नष्ट कर दे।

भावार्थ—वीर्यरूप वरणमणि उन रोगों को आरम्भ में ही समाप्त करनेवाली हो जो शरीरस्थ अनिष्टों व शरीर के ही विध्वंस का कारण बनते हैं।

सूचना—यहाँ यह संकेत भी स्पष्ट है कि जिस राष्ट्र में युवक इस वरणमणि का रक्षण करते हैं, उस राष्ट्र को व उस राष्ट्र के पशुओं को शत्रु हिंसित नहीं कर पाते।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वरणमणिः, वनस्पतिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

सूर्यः देवः

यथा सूर्यो अतिभाति यथाऽस्मिन्तेज आहितम्।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ १७॥
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ १८॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ १९॥
यथा यशः कन्या ∫यां यथाऽस्मिन्त्संभृते रथे।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ २०॥
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा॥ २१॥

यथा॒ यशो॑ऽग्निहो॒त्रे व॑षट्का॒रे यथा॒ यशः॑।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भूति॑ं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ सम्यु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा॥ २२॥
यथा॒ यशो॒ यज॑माने॒ यथा॑ऽस्मिन्य॒ज्ञ आहि॑तम्।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भूति॑ं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ सम्यु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा॥ २३॥
यथा॒ यश॑ः प्र॒जाप॑तौ॒ यथा॑ऽस्मिन्पर॒मे॒ष्ठिनि॑।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भूति॑ं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ सम्यु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा॥ २४॥
यथा॑ दे॒वेष्व॒मृतं॒ यथै॒षु स॒त्यमाहि॑तम्।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भूति॑ं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ सम्यु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा॥ २५॥

१. **यथा**=जैसे **सूर्यः**=सूर्य **अतिभाति**=अतिशयेन चमकता है, **यथा**=जैसे **अस्मिन्**=इसमें **तेजः आहितम्**=तेज स्थापित हुआ है, **एव**=इसी प्रकार **मे**=मेरे लिए **वरणः मणिः**=यह रोगनिवारक वीर्यमणि **कीर्तिम्**=कीर्ति (fame, glory) व **भूतिम्**=ऐश्वर्य को **नियच्छतु**=दे। यह **मा**=मुझे **तेजसा**=तेजस्विता से **समुक्षतु**=सिक्त करे, **यशसा**=(beauty, splendour) सौन्दर्य से **मा समनक्तु**=मुझे अलंकृत करे। २. **यथा**=जैसे **चन्द्रमसि**=चन्द्रमा में **यशः**=सौन्दर्य है, **च**=और **नृचक्षसि आदित्ये**=जैसा सौन्दर्य मनुष्यों को देखनेवाले—उनका पालन करनेवाले (look after) सूर्य में है, **यथा**=जैसा **यशः**=सौन्दर्य **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी में है, और **यथा**=जैसा सौन्दर्य **अस्मिन् जातवेदसि**=इस अग्नि में है। **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **कन्यायाम्**=इस युवति कन्या में है, और **यथा**=जैसा सौन्दर्य इस **संभृते रथे**=सम्यक् भृत—जिसके सब अवयव सम्यक् जुड़े हुए हैं, ऐसे रथ में हैं। **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **सोमपीथे**=सोम (वीर्य) के शरीर में ही सुरक्षित करने में है और **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **मधुपर्के**=अतिथि को दिये जानेवाले पूजाद्रव्य में है, **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **अग्निहोत्रे**=अग्निहोत्र में है, **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **वषट्कारे**=स्वाहाकार के उच्चारण में है। **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **यजमाने**=यज्ञशील पुरुष में है, **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **अस्मिन् यज्ञे**=इस यज्ञ में **आहितम्**=स्थापित हुआ है। **यथा यशः**=जैसा सौन्दर्य **प्रजापतौ**=प्रजाओं के रक्षक राजा में है और **यथा**=जैसा सौन्दर्य **अस्मिन् परमेष्ठिनि**=इस परमस्थान में स्थित प्रभु में है, इसी प्रकार यह वरणमणि मुझे यश (सौन्दर्य) से अलंकृत करे। ३. **यथा**=जैसे **देवेषु**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **अमृतम्**=नीरोगता आहित होता है, **यथा**=जैसे **एषु**=इन देवों में **सत्यं आहितम्**=सत्य स्थापित होता है। देव नीरोग होते हैं और कभी अनृत नहीं बोलते, इसी प्रकार यह वरणमणि मुझे कीर्ति व ऐश्वर्य प्राप्त कराए। यह मुझे तेज से सिक्त करे और सौन्दर्य से अलंकृत करे।

भावार्थ—वरणमणि (वीर्य) के रक्षण से जीवन सूर्यसम दीप्तिवाला होता है, जीवन चन्द्र की भाँति चमकता है, शरीर-रथ संभृत होता है, हमारी प्रवृत्ति यज्ञशीलतावाली होती है व हम नीरोगता तथा सत्य का धारण करते हुए देव बनते हैं।

देववृत्ति का पुरुष अपने जीवन में 'गरुत्मान् तक्षकः'=(गरुतः अस्य सन्ति) विविध ज्ञानरूप पक्षोंवाला तथा निर्माता—निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त होता है। इसका चित्रण इसप्रकार है—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

'इन्द्र, देव, वरुण'

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत्।
अहीनामपमा रथं स्थाणुमारदथार्षत्॥ १॥

१. यह शरीर रथ है। प्रभु ने जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिए इसे हमें प्राप्त कराया है। यह **रथः**=रथ **इन्द्रस्य प्रथमः**=जितेन्द्रिय पुरुष का सबसे पहले है। **अपरः**=दूसरा—दूसरे स्थान पर यह **रथः**=शरीर-रथ **देवानाम्**=रोगादि को जीतने की कामनावालों का है। **तृतीयः**=तीसरा यह **इत्**=निश्चय से **वरुणस्य**=द्वेषादि के निवारण करनेवाले का है। हमें इस शरीर-रथ को प्राप्त करके 'इन्द्र, देव व वरुण' बनना है। २. **अहीनाम्**=(आहन्ति इति अहिः) हिंसक वृत्तिवालों का यह **रथः**=रथ **अपमा**=(अपमः विभक्तेराकारः) सबसे निकृष्ट (अपम Lower) है। यदि मनुष्य हिंसावृत्ति से ऊपर 'इन्द्र, देव व वरुण' बनता हुआ **स्थाणुम् आरत्**=स्थिर—भक्तियोग सुलभ स्थाणु (स्थिर) प्रभु को प्राप्त करता है, **अथ**=तो **अर्षत्**=इस रथ को समाप्त कर डालता है (ऋष् to kill), अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठ जाता है।

भावार्थ—इस शरीर-रथ को प्राप्त करके हम 'जितेन्द्रिय, नीरोग (अजर, अमर) व निर्दोष' बनें, हिंसावृत्तिवाले न हों (अहि), तभी हम प्रभु को प्राप्त करेंगे और इस शरीररथ की आवश्यकता न रहेगी।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**त्रिपदायवमध्यागायत्री**॥

दर्भः, शोचिः, तरुणकम्

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः पुरुषस्य वारः। रथस्य बन्धुरम्॥ २॥

१. **दर्भः**=कुशा घास **अश्वस्य**=(अश् व्याप्तौ) कर्मों में व्याप्त रहनेवाले पुरुष की **वारः**=वरणीय वस्तु होती है। यज्ञवेदि पर कुशासन आदि के रूप में कुशा का प्रयोग होता है। यह पवित्र मानी गई है। यज्ञिय संस्कारों में इसका स्थान-स्थान पर प्रयोग होता है। २. इसी प्रकार **शोचिः**=ज्ञान की दीप्ति **पुरुषस्य**=शत्रुओं के प्रति कठोर (sharp, violent, keen)—शत्रुसंहारक पुरुष की **वारः**=वरणीय वस्तु है। ज्ञानाग्नि में ही तो वह इन काम, क्रोध, लोभ को भस्म कर पाएगा। ३. **तरूणकम्**=पृथिवी से अंकुरित (sprout) होनेवाले ये वानस्पतिक पदार्थ **रथस्य बन्धुरम्**=इस शरीर-रथ के शिखर हैं। इन पदार्थों का प्रयोग करता हुआ ही एक व्यक्ति इस शरीर-रथ के सौन्दर्य को स्थिर रख पाता है (बन्धुर—beautiful)।

भावार्थ—हम यज्ञवेदि को कुशादि स्तीर्ण करके यज्ञ करनेवाले बनें, ज्ञानज्योति में वासनाओं को दग्ध कर दें तथा वानस्पतिक पदार्थों का प्रयोग करते हुए शरीर-रथ के सौन्दर्य को नष्ट न होने दें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

श्वेतः अरंघुशः

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्॥ ३॥
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम्॥ ४॥

१. हे **श्वेत**=शुद्ध आचरणवाले पुरुष! तू **पूर्वेण च अपरेण च पदा**=(पद गतौ, गतिर्ज्ञानम्) पूर्व तथा अपर ज्ञान के द्वारा—आत्मतत्त्व तथा प्रकृति के ज्ञान के द्वारा—परा व अपरा विद्या

के द्वारा **अवजहि**=सब बुराइयों को दूर फेंकनेवाला हो, **इव**=जैसे **उदप्लुतम्**=पानी से आप्लुत (flooded, filled with) **दारु**=लकड़ी **अरसम्**=निर्बल हो जाती है, इसी प्रकार हम जब ज्ञान प्राप्त करते हैं तब हमारे लिए **अहीनाम्**=(आहन्तॄणाम्) हिंसकों का **विषं** (अरसम्)=विष शक्तिशून्य हो जाता है। ज्ञानी पर हिंसकों के विषैले प्रहारों का प्रभाव नहीं होता। उसका **वाः**=यह ज्ञान-जल **उग्रम्**=तेजस्वी होता है—यह बुराई को धो डालने में समर्थ होता है। २. **अरंघुषः**=प्रभु के स्तोत्रों व ज्ञानवाणियों का खूब उच्चारण करनेवाला यह पुरुष **निमज्य उन्मज्य**=बारम्बार इन स्तोत्रों व ज्ञानवाणियों में डुबकी लगाकर **पुनः**=फिर **अब्रवीत्**=कहता है कि ज्ञान होने पर गीली लकड़ी के समान हिंसकों के विषैले प्रहार निर्बल हो जाते हैं। तेजस्वी ज्ञान-जल सब विषों को प्रभावशून्य कर देता है।

भावार्थ—हम परा व अपरा विद्या का अर्जन करके जीवन को अति शुद्ध बनाएँ। प्रभु के स्तोत्रों के जलों व ज्ञान-जलों में खूब ही स्नान करनेवाले बनें। ऐसा करने पर हम हिंसकों के विषैले प्रहारों से आहत न होंगे। हमारा तेजस्वी ज्ञान-जल विष को धो डालने में समर्थ होगा।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कसर्णीलं, श्वित्रं, असितम् (हन्ति)

पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम्।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः॥ ५॥

१. **पैद्वः**=(पद गतौ, पैद्वः-अश्वः—नि० १।१४ कर्मव्याप्त) कर्मशील—गतिशील पुरुष **कसर्णीलम्** (कस् to destroy, नील-निधि) विनाशक धन को, अन्याय व छलादि से उपार्जित धन को **हन्ति**=नष्ट करता है। यह क्रियाशील बनता हुआ अन्याय्य धन को कभी उपार्जित करने का विचार नहीं करता। **पैद्वः**=यह क्रियाशील पुरुष **श्वित्रम्**=कुष्ठादि रोगों को नष्ट करता है **उत्**=और **असितम्**=कृष्ण (मलिन) कर्मों को भी विनष्ट करता है—न यह रोगों का शिकार होता है, न ही पापों का। २. यह **पैद्वः**=गतिशील पुरुष **रथर्व्याः**=इस गतिशील (रथर्यतिर्गतिकर्मा—नि० २।१४) **पृदाक्वाः**=(पृ, दा, कु) पालन के लिए अन्न देनेवाली पृथिवी के **शिरः**=सिर को—पृष्ठ को **संबिभेद**=विदीर्ण करता है। कृषि द्वारा इसके पृष्ठ को भिन्न करनेवाला होता है। वेद के '**अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व**' इस उपदेश के अनुसार यह कृषि करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम गतिशील बनकर कृषि आदि कार्यों से—उत्तम कार्यों से उत्तम अन्नों को प्राप्त करें। रोगों व पापों से बचें तथा अन्यायोपार्जित विनाशक धनों के संग्रह से दूर रहें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

नेता का कर्त्तव्य

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि।
अहीन्व्य स्यतात्पथो येन स्मा वयमेमसि॥ ६॥

१. **पैद्व**=हे गतिशील पुरुष! तू **प्रेहि**=प्रकृष्ट गतिवाला बन। **प्रथमः**=शक्तियों के विस्तारवाला हो (प्रथ विस्तारे)। **त्वा अनु वयं आ ईमसि**=तेरे पीछे-पीछे हम भी सब ओर गतिवाले हों। उत्तम नेता स्वयं गतिवाला होता हुआ अनुयायियों के लिए पथ-प्रदर्शक बनता है। २. हे पैद्व! आप **पथः**=उस मार्ग से **अहीन् व्यस्यतात्**=हिंसक तत्त्वों को दूर फेंकें—दूर करें, **येन**=जिस मार्ग से **वयं आ ईमसि स्म**=हम गतिवाले होते हैं। हमारे नेता हमारे मार्गों को विघ्न-बाधाशून्य करें।

भावार्थ—हमारा नेतृत्व गतिशील व्यक्तियों के हाथ में हो। वे हमारे मार्ग से हिंसक तत्त्वों को दूर करें। हमारे लिए उनका जीवन पथ-प्रदर्शक हो।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अर्वः, अहिघ्न्य, वाजिनीवान्

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम्।
इमान्यर्वतः पदाऽहिघ्न्यो वाजिनीवतः॥ ७॥

१. **इदम्**=(इदानीम्) अब **पैद्वः**=यह गतिशील पुरुष **अजायत**=प्रादुर्भूत शक्तियोंवाला होता है (जनी प्रादुर्भावे)। **इदम् अस्य परायणम्**=इसका यह उत्कृष्ट मार्ग है (पर+अयनम्)। **इमानि पदा**=इसके ये पग उस व्यक्ति के पग हैं जोकि **अर्वतः**=वासनाओं का संहारक है (अर्व् to kill) **अहिघ्न्यः**=(षष्ठ्याः सुः) विनाशक तत्त्वों को नष्ट करनेवाला है और **वाजिनीवतः**=शक्तियुक्त है।

भावार्थ—हम गतिशील बनकर अपनी शक्तियों का विकास करें, उत्कृष्ट मार्ग पर चलें, वासनाओं का संहार करें, हिंसक तत्त्वों को नष्ट करें तथा शक्तियुक्त बनें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**उष्णिग्गर्भापरात्रिष्टुप्**॥

हिंसासामर्थ्य वञ्चन

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन्क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा॥ ८॥

१. साँप मुख खोलकर डसता है—डसने के समय मुख को भींचता है। यदि उसका खुला हुआ मुख बन्द न हो सके और बन्द हुआ-हुआ खुल न सके तो यह दशन-क्रिया न हो पाएगी। उस स्थिति का ध्यान करते हुए कहते हैं कि—**संयतम्**=बन्द हुआ-हुआ मुख **न विष्परत्**=(स्पृ प्रीतिचालनयोः) न खुल सके, बन्द-का-बन्द ही रह जाए। **व्यात्तम्**=खुला हुआ मुख **न संयतम्**=बन्द न हो पाये। इसप्रकार उसका डसना सम्भव ही न हो। २. **अस्मिन् क्षेत्रे**=इस संसाररूप क्षेत्र में **द्वौ अही**=दो हिंसक हैं, **स्त्री च पुमान् च**=एक स्त्री है, एक पुरुष। 'पुरुष ही हानिकर हों, स्त्रियाँ नहीं' ऐसी बात भी नहीं है, और न ही यह है कि 'स्त्रियाँ हानिकर हों पुरुष नहीं'। दोनों ही हिंसक हो सकते हैं। **तौ उभौ**=वे दोनों **अरसा**=निर्बल हों—असक्त हों। ये हानि करने का सामर्थ्य ही खो बैठें।

भावार्थ—संसार में जो भी पुरुष व स्त्री हिंसक हों, राजपुरुष उन्हें इसप्रकार दण्डित करें कि उनकी हिंसा करने की शक्ति ही न रहे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वृश्चिक, अहि

अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्॥ ९॥

१. **इह**=इस संसार-क्षेत्र में **ये अहयः**=जो हिंसक तत्त्व **अन्ति**=हमारे समीप हैं, **ये च**=और जो **दूरके**=दूर हैं, वे सब **अरसासः**=नीरस व निर्बल हो जाएँ। **आगतं वृश्चिकम्**=समीप आये हुए बिच्छु को **घनेन हन्मि**=घन से नष्ट करता हूँ तथा **अहिम्**=सर्प को **दण्डेन**=डण्डे से मारता हूँ।

भावार्थ—सर्प व बिच्छु स्वभाववाले पुरुषों को दण्डित करना आवश्यक ही है। प्रजा-रक्षण के लिए इन्हें नष्ट करना अनिवार्य है।

सूचना—वृश्चिक को घन से, सर्प को डण्डे से आहत करने का स्वारस्य चिन्त्य है।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अघाश्व व स्वज

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत्॥ १०॥

१. कामवासना को यहाँ 'अघाश्व' कहा है—यह '**अघम् अश्नुते**' पाप को व्याप्त करनेवाली होती है। लोभ व तृष्णा को 'स्वज' कहा है, क्योंकि यह (स्वञ्ज् आलिङ्गने) चिपट-सी जाती है तथा (सु अज गतिक्षेपणयोः) हमें सदा भाग-दौड़ में विक्षिप्त-सा रखती है। **इदम्**=इस प्रस्तुत मन्त्र में 'इन्द्र' व 'पैद्व' शब्द से वर्णित 'जितेन्द्रियता व गतिशीलता' **अघाश्वस्य**=कामवासना, **स्वजस्य च**=और तृष्णा, **उभयोः**=इन दोनों का **भेषजम्**=औषध है। २. **इन्द्रः**=जितेन्द्रियता से अलंकृत **पैद्वः**=यह गतिशील देव **मे**=मेरे **अघायन्तम्**=अघ—अशुभ को चाहनेवाली **अहिम्**=आहन्ति—विनाशिका वासना को **अरन्धयत्**=नष्ट करता है। 'इन्द्र व पैद्व' का स्मरण मुझे भी जितेन्द्रिय व गतिशील बनाये। जितेन्द्रिय बनकर मैं कामवासना को पराजित करनेवाला बनूँ तथा गतिशीलता मुझे श्रमजन्य धन को ही चाहनेवाला बनाये।

भावार्थ—हम जितेन्द्रिय व गतिशील बनकर कामवासना व तृष्णा को पराजित करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पृदाकवः प्रदीध्यतः

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते॥ ११॥

१. **वयम्**=हम **स्थिरस्य**=स्थिरवृत्तिवाले, **स्थिरधाम्नः**=स्थिर तेजवाले, **पैद्वस्य**=गतिशील व्यक्ति का **मन्महे**=मनन करते हैं, इसके जीवन का चिन्तन करते हैं। **इमे**=ये पैद्व लोग **पृदाकवः**=(पृदाकु) पालन के लिए दान की वृत्तिवाले **प्रदीध्यतः**=(दीधीङ् दीप्तौ) दीप्त जीवनवाले **पश्चा आसते**=विषय-व्यावृत होकर पीछे ही बैठते हैं। 'प्रत्याहार' की साधना करते हुए ये लोग विषयों में नहीं फँसते।

भावार्थ—'स्थिर, स्थिरधाम्ना, पैद्व' लोगों का चिन्तन करते हुए हम भी 'गतिशील, स्थिर वृत्तिवाले व स्थिर तेजवाले' बनें। दान की वृत्तिवाले व दीप्त जीवनवाले बनकर हम विषय-व्यावृत रहें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥

वज्री इन्द्रः

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम्॥ १२॥

१. **वज्रिणा**=गतिशील (वज् गतौ) **इन्द्रेण**=जितेन्द्रिय पुरुष से **हताः**=मारे हुए 'काम, क्रोध, लोभ' रूप असुर **नष्टासवः**=नष्ट-प्राण हो जाते हैं और **नष्टविषाः**=इनका विषैला प्रभाव हमारे जीवन से दूर हो जाता है। २. **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **जघान**=इन असुरों को मार डालता है। **वयम् जघ्निमा**=हम भी इन आसुरभावों को नष्ट करनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—गतिशील, जितेन्द्रिय पुरुष 'काम, क्रोध, लोभ' रूप असुरों का विनाश करके उनके विषैले प्रभाव से बचाता है। हम भी ऐसे ही बनें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दर्विम् करिक्रतं (जहि)

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि॥ १३॥

१. **तिरश्चिराजयः**=कुटिलता (crooked) व छल-छिद्र की पंक्तियाँ **हताः**=नष्ट की गई हैं। **पृदाकवः**=(पिपर्ति स्वम्, 'पिपर्तेर्दाकुर्ह्रस्वश्च') आत्मम्भरिता व स्वार्थ की वृत्तियाँ **निपिष्टासः**=पीस डाली गई हैं। २. **दर्विम्**=विदारण की वृत्ति को **करिक्रतम्**=अतिशयेन कृन्तन (छेदन) की वृत्ति को **श्वित्रम्**=कुष्ठादि रोगों को व **असितम्**=कृष्ण (मलिन) कर्मों को **दर्भेषु**=यज्ञार्थ यज्ञवेदि पर कुशाओं के आस्तिर्ण होने पर **जहि**=नष्ट कर डाल।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। यज्ञीय वृत्ति के द्वारा हम 'कुटिलता, स्वार्थ, विदारणवृत्ति, छेदन-भेदन की वृत्ति, रोगों व अशुभ कर्मों को नष्ट कर डालें।'

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कैरातिका, कुमारिका

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम्।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु॥ १४॥

१. 'किरात' शब्द 'कु विक्षेपे तथा अत सातत्यगमने' धातुओं से बनकर निरन्तर विक्षिप्त गतिवाले का वाचक है। 'कुमार' शब्द 'कुमार क्रीडायाम्' से बनकर 'खेलते रहनेवाले' का वाचक है। इन दोनों हानिकर वृत्तियों को दूर करने का उपाय ज्ञान प्राप्त करना है। आचार्यों के समीप रहकर उनकी ज्ञानदान की क्रियाओं में ही इन वृत्तियों को दूर करने का औषध विद्यमान है, अतः कहा है कि **कैरातिका**=निरन्तर विक्षिप्त गतिवाली **कुमारिका**=विषयों में क्रीडा की मनोवृत्तिवाली **सका**=वह कुत्सित आचरणवाली युवति **गिरीणाम्**=ज्ञान की वाणियों का उपदेश देनेवाले गुरुओं की **सानुषु**=(षणु दाने सनोति) ज्ञानदान की क्रियाओं में **भेषजम्**=अशुभ वृत्तियों के निराकरण की औषध को **हिरण्ययीभिः अभ्रिभिः**=(अभ्र गतौ) ज्योतिर्मय गतियों के द्वारा **उपखनति**=समीपता से खोदती है। ज्ञान ही औषध है, उसे यह प्राप्त करती है। इस ज्ञान-औषध को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ज्ञान-प्राप्ति के अनुकूल क्रियाओंवाली हो। यही भाव यहाँ 'हिरण्ययीभिः अभ्रिभिः' शब्दों से व्यक्त हुआ है।

भावार्थ—ज्ञानदाता आचार्यों के समीप रहकर ज्ञान-प्राप्ति के लिए अनुकूल गतियोंवाले होते हुए हम ज्ञान प्राप्त करें, इस ज्ञान-औषध द्वारा विक्षिप्त गतियों व विषय-क्रीड़ाओं को समाप्त करनेवाले हों।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

युवा, भिषक्, पृश्निहा, अपराजितः

आयमगन्युवा भिषक्पृश्निहापराजितः।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च॥ १५॥

१. गतमन्त्र के अनुसार आचार्यों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला **अयम्**=यह **युवा**=बुराइयों को दूर करनेवाला व अच्छाइयों को अपने साथ मिलानेवाला **भिषक्**=पापरूप रोगों का चिकित्सक **पृश्निहा**=(पृश्नि A ray of light हन् गतौ) प्रकाश की किरणों को प्राप्त करनेवाला **अपराजितः**=वासनाओं से पराजित न होनेवाला युवक **आ अगन्**=आया है। २. **सः**=वह **वै**=निश्चय से

स्वजस्य=(स्वज् आलिंगने, सु अज गतिक्षेपणयोः) चिपट जानेवाली व विक्षिप्त गति पैदा करनेवाली तृष्णावृत्ति, **वृश्चिकस्य च**=(व्रश्च् छेदने) और छेदन-भेदन की वृत्ति **उभयोः**=दोनों का ही **जम्भनः**=नाश करनेवाला है।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्त करके हम 'युवा, भिषक्, पृश्निहा व अपराजित' बनें। तृष्णा व छेदन-भेदन की वृत्ति का विनाश करें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**त्रिपदाप्रतिष्ठागायत्री**॥

'इन्द्र, मित्र, वरुण, वात, पर्जन्यः'

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च। वातापर्जन्योभा॥ १६॥

१. **इन्द्रः**=जितेन्द्रियता की देवता **मे**=मेरी **अहिम्**=आहन्ति—कामवृत्ति को—ज्ञान पर पर्दे के रूप में आ जानेवाली वासना को **अरन्धयत्**=नष्ट करती है। इसी प्रकार **मित्राः च वरुणः च**=सबके प्रति स्नेह तथा निर्द्वेषता की भावना मेरी इस वासना को नष्ट करती है। इसी प्रकार **उभा**=दोनों **वातापर्जन्या**=वात व पर्जन्य—क्रियाशीलता की देवता(वा गतौ) तथा सुखों को सिक्त करने की भावना (पृषु सेचने—उ० ३।१०३) मेरे लिए वासना को विनष्ट करें।

भावार्थ—'जितेन्द्रियता, स्नेह की भावना, निर्द्वेषता, क्रियाशीलता व सुखसेचनवृत्ति' को धारण करते हुए हम वासना को विनष्ट करनेवाले बनें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अहि' आदि का विनाश

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत्पृदाकुं च पृदाक्व ∫ म्।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम्॥ १७॥

१. **इन्द्रः**=शत्रु-विद्रावक प्रभु **मे**=मेरी **अहिम्**=आहन्ति—विहिंसिका वृत्ति को **अरन्धयत्**=नष्ट कर दें, **पृदाकुं च पृदाक्वम्**=(पिपर्ति स्वम्, पर्द कुत्सिते शब्दे 'पर्देर्नित् संप्रसारणमल्लोपश्च' उ० ३.८०) स्वात्मम्भरिता (स्वार्थवृत्ति) को और कुत्सित शब्दोच्चारण-वृत्ति को नष्ट करने का अनुग्रह करें। २. **स्वजम्**=चिपट जानेवाली व अत्यन्त विक्षिप्त गतिवाली तृष्णावृत्ति को, **तिरश्चिराजिम्**=कुटिलता व छल-छिद्र की पंक्तियों को, **कसर्णीलम्**=विनाशक धन (निधि) को—अन्यायोपार्जित धन को तथा **दशोनसिम्**=इन्द्रिय दशक में उत्पन्न हो जानेवाली (**ऊनसि**=ऊन परिहाणे) हानि को दूर करें।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हम 'हिंसा की वृत्ति, स्वार्थ व कुटिल शब्दोच्चारण की वृत्ति, तृष्णा, छल-छिद्र, अन्यायोपार्जित धन तथा इन्द्रिय दशक में आ जानेवाली हानि' से बचें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अहि के जनिता' का विनाश

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित्तेषामसद्रसः॥ १८॥

१. हे **अहे**=विहिंसन की वृत्ति! **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **तव**=तेरे **जनितारम्**=उत्पन्न करनेवाले भाव को ही **प्रथमं जघान**=सबसे पहले नष्ट कर डालता है। जिन 'काम, क्रोध, लोभ' के कारण यह हिंसनवृत्ति उत्पन्न होती है, उन कामादि को ही यह जितेन्द्रिय पुरुष नष्ट कर देता है। २. **उ**=निश्चय से **तृह्यमाणानाम्**=नष्ट किये जाते हुए **तेषां तेषाम्**=उन-उन काम-क्रोधादि भावों का **स्वित्**=भला **कः रसः असत्**=क्या रस अवशिष्ट हो सकता है? जब मनुष्य काम-क्रोधादि के

नाश के प्रयत्न में लगता है तब इन हिंसन वृत्तियों का स्वयं ही नाश हो जाता है।

भावार्थ—हम हिंसन वृत्तियों के मूलभूत काम, क्रोध, लोभादि को समाप्त करने का प्रयत्न करें। इन्हें नष्ट करके हम हिंसन-वृत्तियों से दूर हों।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सिन्धोः मध्यं परेत्य

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठईव कर्वरम्।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्य ∫ निजमहेर्विषम्॥ १९॥

१. गतमन्त्र में 'काम, क्रोध, लोभ' आदि असुरों को अहि (हिंसिका वृत्ति) का जनिता कहा था। यहाँ कहते हैं कि मैं **हि**=निश्चय से इन आसुरवृत्तियों के **शीर्षाणि सम् अग्रभम्**=सिरों को सम्यक् पकड़ लेता हूँ—इनके सिरों को कुचल डालता हूँ। इसप्रकार इन्हें पकड़ लेता हूँ, **इव**=जैसेकि **पौञ्जिष्ठः**=(प्र ओजिष्ठः) प्रकृष्ट तेजस्वी पुरुष **कर्वरम्**=एक चीते (Tiger) को पकड़ लेता है। २. मैं **सिन्धोः मध्यं परेत्य**=ज्ञान-समुद्र के मध्य में दूर तक जाकर—ज्ञान-समुद्र में स्नान करता हुआ—**अहेः विषम्**=हिंसकवृत्ति के विष को—विषैले प्रभाव को—**व्यनिजम्**=धो डालता हूँ। ज्ञान-जल में स्नान करता हुआ मैं हिंसावृत्ति से ऊपर उठता हूँ।

भावार्थ—हम काम, क्रोध, लोभ आदि आसुरवृत्तियों को कुचल दें और ज्ञान का सम्पादन करते हुए हिंसावृत्ति के ऊपर उठें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

माहिर्भूः, मा पृदाकुः, (यजुः० ८.२३)

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः॥ २०॥

१. **सिन्धवः**=ज्ञान-जल **सर्वेषां अहीनाम्**=सब विहिंसिका वृत्तियों के **विषम्**=विष को—विषैले प्रभाव को **परावहन्तु**=दूर बहा दें। हम ज्ञान प्राप्त करके हिंसा की वृत्ति से ऊपर उठें। इन ज्ञान-जलों द्वारा ही **तिरश्चिराजयः**=(तिरश्ची crooked) छल-छिद्र की वृत्तियों की पंक्तियाँ **हताः**=नष्ट कर दी गई हैं और **पृदाकवः**=(पर्द कुत्सिते शब्दे; कुत्सितवाक्—यजुः० ८.२३) कुत्सितवाणी बोलने की प्रवृत्तियाँ **निपिष्टासः**=पीस डाली गई हैं। यजुर्वेद ८.२३ में यही तो कहा है कि '**माहिर्भूर्मा पृदाकुः**'=न हिंसक बन, न कुत्सितवाणीवाला।

भावार्थ—ज्ञान-जलों द्वारा शुद्ध जीवनवाले बनकर हम 'हिंसा, कुटिलता व कुत्सितवाणी' से ऊपर उठें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

ओषधिवरण

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम्॥ २१॥

१. हे **अहे**=हिंसावृत्ते! **अहं**=मैं **ओषधीनाम्**=(आचार्यो मृत्युर्वरुण ओषधयः पयः) आचार्यों का **वृणे**=वरण करता हूँ। **इव**=जिस प्रकार **उर्वरीः**=उपजाऊ भूमियों (fertile soil) का **साधुया**=उत्तमता से वरण किया जाता है। इन उपजाऊ भूमियों का वरण अन्नों को प्राप्त कराता है। इसी प्रकार आचार्यों का वरण ज्ञान-जलों को प्राप्त कराता है। २. इन आचार्यों से प्राप्त ज्ञान-जलों को मैं इसप्रकार **नयामि**=अपने जीवन में प्राप्त कराता हूँ, **इव**=जैसेकि **अर्वतीः**=(अर्व् to

kill) शत्रुसंहारक घोड़ियों को योद्धा युद्धभूमि में प्राप्त कराता है, अतः हे हिंसावृत्ते! **ते विषं निरैतु**=तेरा विष मेरे जीवन से बाहर निकल जाए।

भावार्थ—आचार्यों का वरण करते हुए हम ज्ञान-जलों में हिंसा की वृत्तियों के विष को धो डालें। ज्ञान हमसे द्वेष व हिंसा को दूर कर दे।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कान्दाविषम् कनक्नकम्

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम्॥ २२॥

१. **यत्**=जो **विषम्**=जल **अग्नौ**=अग्नि में है (अग्नेः आपः), **सूर्ये**=सूर्य में है (सूर्यकिरणों से बादलों का निर्माण होकर यह जल प्राप्त होता है '**सहस्रगुणमुत्स्रष्टुं आदत्ते हि रसं रविः**'। **यत्**=जो **पृथिव्याम्**=पृथिवी में है (कूप आदि से प्राप्त होता है) जो **ओषधीषु**=ओषधियों में रसरूप है, वह जल **ऐतु**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। २. हे हिंसावृत्ते! **ते**=तेरा जो **कान्दाविषम्**=(विष् व्याप्तौ, कन्द knot) ग्रन्थियों में—जोड़ों में व्याप्त हो जानेवाला **कनक्नकम्**=(कन दीप्तौ, क्रथ हिंसायाम्) दीप्ति को नष्ट कर देनेवाला **विषम्**=विष है, वह **निरैतु**=सब प्रकार से बाहर चला जाए।

भावार्थ—हम अग्नि से उत्पन्न होनेवाले—सूर्य से मेघों द्वारा प्राप्त कराये जानेवाले—पृथिवी से दिये जानेवाले व ओषधिरसों में प्राप्त होनेवाले जलों को प्राप्त करें। हिंसावृत्ति से उत्पन्न हो जानेवाले, जोड़ों में व्याप्त, दीप्तिनाशक विष को दूर करें।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विद्युतः (अग्निजाः, ओषधिजाः, अप्सुजाः)

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम॥ २३॥

१. 'अहि' शब्द सर्प का वाचक है—यह 'आहन्ति'—विनाश कर देता है। इसी प्रकार हिंसन करनेवाले व्यक्ति भी 'अहि' हैं। 'अग्निजाः' वे व्यक्ति हैं जोकि 'अग्नौ जाताः' अग्नि का ही मानो अनुभव लेने के लिए उत्पन्न हुए हैं और अग्निविद्या में निपुण होकर बम्ब आदि घातक शस्त्रों के निर्माण में लगे हैं। इसी प्रकार 'ओषधिजाः' वे हैं, जोकि नाना प्रकार की ओषधियों के प्रयोग में निपुण हैं, परन्तु वे इसप्रकार की ओषधियों के निर्माण में प्रवृत्त हैं, जिनके प्रयोग से मनुष्य बिना किन्हीं भौतिक कष्टों का अनुभव किये विलासमय जीवन बिता पाता है। इसी प्रकार 'अप्सुजाः' वे हैं जोकि जलों की विद्या में निपुण होकर युद्धपोतों व पनडुब्बियों के बनाने में लगे हैं। ये सब **विद्युतः**=विशिष्ट ज्ञानज्योति—द्युतिवाले—तो हैं ही। २. अतः मन्त्र में कहते हैं कि **ये**=जो **अहीनाम्**=हिंसकवृत्तिवाले पुरुषों में **अग्निजाः ओषधिजाः**=अग्निविद्या व ओषधिविज्ञान में निपुण हैं, **ये अप्सुजाः**=जो जलविद्या में निपुण होते हुए **विद्युतः**=विशिष्ट द्युतिवाले—वैज्ञानिक **आबभूवुः**=बने हैं, **येषाम्**=जिनके **बहुधा**=बहुत प्रकार से **महान्ति**=महान् आश्चर्यजनक कर्म **जातानि**=हुए हैं—एक ही बम्ब से लाखों का विनाश आदि कर्म प्रकट हुए हैं, **तेभ्यः**=उन **सर्पेभ्यः**=कुटिलवृत्तिवाले विनाशक पुरुषों के लिए **नमसा विधेम**=दूर से ही नमन द्वारा पूजा करते हैं—इन्हें दूर से ही नमस्कार करते हैं। प्रभुकृपा से हम इन व्यक्तियों से बचे ही रहें।

भावार्थ—जो वैज्ञानिक 'अग्नि, ओषधि व जलों' की विद्याओं में निपुण होकर विनाशक शस्त्रास्त्रों को तैयार कर रहे हैं, जिनके 'लाखों का विनाश' आदि भयंकर कर्म हमारे सामने

हैं, उन कुटिलवृत्तिवाले, विशिष्ट द्युतिवाले वैज्ञानिकों के लिए हम दूर से ही नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कन्या (तौदी, घृताची)

तौदी॒ नामा॑सि क॒न्या॑ ऽ घृ॒ताची॒ नाम॒ वा अ॑सि।
अ॒धस्प॒देन॑ ते प॒दमा द॑दे विष॒दूष॑णम्॥ २४॥

१. 'कन्या' नामक ओषधिविशेष है। बड़ी इलायची 'Large cardamoms' के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। कहते हैं कि **तौदी नाम असि कन्या**=तू तौदी नामवाली कन्या है (तुद् व्यथने)। विषपीड़ा को व्यथित करने से, अर्थात् विषपीड़ा को दूर भगाने से इस कन्या का नाम 'तौदी' है। **वा**=अथवा तू **घृताची नाम असि**=(घृत अञ्चु, घृ क्षरणदीप्त्योः) मलों को क्षरित करके दीप्ति प्राप्त कराने से 'घृताची' नामवाली है। २. **अधस्पदेन**=विषपीड़ा आदि शत्रुओं को पादाक्रान्त करने के हेतु से **ते**=तेरे **विषदूषणम्**=विष को दूषित करनेवाले **पदम्**=मूल को **आददे**=ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ—कन्या नामक ओषधि के मूल के द्वारा विष को नष्ट किया जा सकता है। इसी से इसके 'तौदी व घृताची' नाम हुए हैं।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विषस्य तेजः अवाचीनम्

अङ्गा॑दङ्गा॒त्प्र च्या॑वय॒ हृद॑य॒ं परि॑ वर्जय।
अधा॑ वि॒षस्य॒ यत्ते॒जोऽवा॒चीन॑ं तद॑ेतु ते॥ २५॥

१. **अङ्गात् अङ्गात् प्रच्यावय**=एक-एक अङ्ग से विष के इस तेज को प्रच्युत कर दे। **हृदयं परिवर्जय**=हृदय को इस विष के तेज से पृथक् कर दे। 'इर्ष्या, द्वेष, क्रोध' आदि से भी शरीर में विष उत्पन्न हो जाता है। इस विष को हम प्रत्येक अङ्ग से दूर करें—हृदय में तो इसे उत्पन्न ही न होने दें। २. **अध**=अब **विषस्य यत् तेजः**=विष का जो तेज है, **तत्**=वह **ते अवाचीनं एतु**=तेरे नीचे गतिवाला हो, अर्थात् तू उसे पाँव तले रौंद डाल।

भावार्थ—हम ईर्ष्या आदि से उत्पन्न हो जानेवाले विष को अपने से दूर करें—हृदय में तो यह विष स्थान न ही पाए। इस विष के तेज को हम पादाक्रान्त कर पाएँ।

ऋषिः—**गरुत्मान्**॥ देवता—**सर्पविषापाकरणम्**॥ छन्दः—**षट्पदाबृहतीगर्भाककुम्मती भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

विष-चिकित्सा क्रम

आ॒रे अ॑भूद्वि॒षम॑रौद्वि॒षे वि॒षम॑प्रा॒गपि॑। अ॒ग्निर्वि॒षम॒हेर्नि॑र॑धा॒त्सोमो॒ निर॑णयीत्।
दं॒ष्टार॒मन्व॑गाद्वि॒षम॑हि॒रमृत॥ २६॥

१. **विषम् आरे अभूत्**=विष दूर हो गया है, चूँकि वैद्य ने विष **अरौत्**=विष को रोक दिया है। दंश स्थान से कुछ ऊपर कसकर पट्टी बाँध देने से शरीर में विष फैला नहीं। अब वैद्य ने **विषे**=उस विष में **विषम्**=सजातीय विष को **अपि**=भी **अप्राक्**=(अपर्चीत्) मिला दिया है। २. अब वैद्य ने उस दंशस्थान को जलाया है और इसप्रकार **अग्निः**=अग्नि ने **अहेः विषम्**=सर्प के विष को **निरधात्**=बाहर कर दिया है। **सोमः निः अनयीत्**=शरीरस्थ सोमशक्ति ने भी इसे बाहर प्राप्त कराया है अथवा सोम ओषधि इसे बाहर ले-जाती है। इसप्रकार करने से **दंष्टारम्**=डसनेवाले साँप को ही **विषम् अनु अगात्**=विष फिर से प्राप्त हुआ है और **अहिः**

अमृत=साँप मर गया है।

भावार्थ—सर्प आदि के दंश में पहले उस स्थान से कुछ ऊपर पट्टी बाँध देना आवश्यक है, पुनः सजातीय विष को वहाँ संपृक्त करना ठीक है। अग्नि से उस स्थान को दग्ध करना चाहिए, 'सोम' नामक ओषधि का प्रयोग वाञ्छनीय है। ऐसा करने पर सर्पविष मानो उसी सर्प को प्राप्त हो जाता है और उसकी मृत्यु का कारण बनता है।

पञ्चम सूक्त के १ से २४ तक मन्त्रों का ऋषि 'सिन्धुद्वीप' है। 'सिन्धवः आपः द्विः गताः यस्मिन्' शरीर में रेतःकणों के रूप में प्रवाहित होनेवाले जल दो प्रकार से 'शरीर में शक्तिरूप से तथा मस्तिष्क में दीप्ति के रूप से' प्राप्त हुए हैं जिसमें, वह व्यक्ति 'सिन्धुद्वीप' है। यह इन 'आपः' (रेतःकणरूप जलों) को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—१-५ **त्रिपदापुरोभिकृतिः ककुम्मतीगर्भापङ्क्तिः**, ६ **चतुष्पदाजगतीगर्भाजगती**॥

'ओजस्, सहस्, बल, वीर्य, नृम्ण

इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑य ब्रह्मयो॒गैर्वो॑ युनज्मि॥ १॥
इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑य क्षत्रयो॒गैर्वो॑ युनज्मि॥ २॥
इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑येन्द्रयो॒गैर्वो॑ युनज्मि॥ ३॥
इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑य सोमयो॒गैर्वो॑ युनज्मि॥ ४॥
इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑याप्सुयो॒गैर्वो॑ युनज्मि॥ ५॥
इन्द्रस्यौज॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ सह॒ स्थेन्द्र॑स्य॒ बल॑ं स्थेन्द्र॑स्य वी॒र्य॑१ स्थेन्द्र॑स्य नृ॒म्णं स्थ॑।
जि॒ष्णवे॒ योगा॑य विश्वा॑नि मा भू॒तान्युप॑ तिष्ठन्तु यु॒क्ता म॑ आप स्थ॥ ६॥

१. हे जलो! **इन्द्रस्य ओजः स्थ**=तुम जितेन्द्रिय पुरुष के ओज हो (ओजस् ability), उसे सब कर्त्तव्यकर्मों को कर सकने के योग्य बनाते हो। **इन्द्रस्य सहः स्थ**=तुम जितेन्द्रिय पुरुष की वह शक्ति हो, जिससे कि यह काम, क्रोध आदि शत्रुओं का धर्षण कर पाता है। **इन्द्रस्य बलं स्थ**=जितेन्द्रिय पुरुष का तुम्हीं मनोबल हो—इन 'आपः' रेतःकणरूप जलों का रक्षण करनेवाला कभी दुर्बल मानस स्थिति में नहीं होता। **इन्द्रस्य वीर्यं स्थ**=तुम जितेन्द्रिय पुरुष की उत्पादन (virility, genertive power) व रोगनिवारक शक्ति हो। **इन्द्रस्य नृम्णं स्थ**=तुम जितेन्द्रिय पुरुष का उत्साह व धन (courage, wealth) हो। २. इन रेतःकणों के रक्षण से 'ओजस्, सहस्, बल, वीर्य व नृम्ण' की प्राप्ति होती है, अतः **जिष्णवे योगाय**=रोगों व वासनारूप शत्रुओं के विजयेच्छु (जिष्णु) उपाय(योग) के लिए मैं **वः**=आपको (रेतःकणों को) **ब्रह्मयोगैः**=ज्ञानप्राप्ति में लगे रहनेरूप उपायों से **युनज्मि**=शरीर में ही युक्त करता हूँ। इसी प्रकार **क्षत्रयोगैः**=बलों का अपने साथ सम्पर्क करने की कामनारूप उपायों से इन्हें मैं शरीर में युक्त करनेवाला बनता

हूँ। **इन्द्रयोगैः**=परमैश्वर्यवाला बनने की कामनारूप उपायों से मैं इन्हें अपने में जोड़ता हूँ। **सोमयोगैः**=सौम्य भोजनों का ही प्रयोग करने के द्वारा मैं इन्हें शरीर में जोड़ता हूँ तथा अन्ततः **अप्सु योगैः**=निरन्तर कर्मों में लगे रहने के द्वारा मैं इन्हें शरीर में ही सुरक्षित करता हूँ। ३. जब मैं शत्रुओं को जीतने के उपाय के रूप में इन रेतःकणों को शरीर में सुरक्षित करता हूँ, तब **विश्वानि भूतानि**=शरीर का निर्माण करनेवाले 'पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश' रूप सब भूत **मा उपतिष्ठन्तु**=मेरे समीप सहायक रूप में उपस्थित हों। इन सब भूतों की अनुकूलता मुझे प्राप्त हो। हे **आपः**=रेतःकणरूप जलो! आप **मे युक्ताः स्थ**=मेरे साथ युक्त रहो। आपकी संयुक्ति ही तो मेरी विजय का कारण बनती है।

भावार्थ—रेतःकणों के रक्षण से 'ओजस्, सहस्, बल, वीर्य व नृम्ण' प्राप्त होता है। इन रेतःकणों के रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम ज्ञानप्राप्ति में लगे रहें—बल व ऐश्वर्य के सम्पादन को अपना लक्ष्य बनाएँ। सौम्य भोजनों का सेवन करें। कर्मों में लगे रहें। इसप्रकार रेतःकणों के रक्षण से सब भूतों की अनुकूलता प्राप्त होगी।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः** ॥ देवता—**आपः** ॥ छन्दः—**७-१४ पञ्चपदाविपरीतपादलक्ष्माबृहती (११, १४ पथ्यापङ्क्तिः)** ॥

'अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुण, मित्रावरुण, यम, पितर, देवसविता'

अग्नेर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ ७॥
इन्द्रस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ ८॥
सोमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ ९॥
वरुणस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ १०॥
मित्रावरुणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ ११॥
यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ १२॥
पितॄणां भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ १३॥
देवस्य सवितुर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये॥ १४॥

१. हे **देवीः आपः**=दिव्य गुणयुक्त अथवा रोगों को जीतने की कामनावाले (दिव् विजिगीषायाम्) रेतःकणरूप जलो! आप **अग्नेः**=प्रगतिशील जीव (अग्रणीः) के **भागः स्थ**=भाग हो, अर्थात् प्रगतिशील जीव को प्राप्त होते हो। इसी प्रकार **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के, **सोमस्य**=सौम्य भोजनों के सेवन द्वारा सौम्य स्वभाववाले पुरुष के, **वरुणस्य**=पाप का निवारण करके श्रेष्ठ बने पुरुष के, **मित्रावरुणयोः**=स्नेहवाले व द्वेष का निवारण करनेवाले पुरुष के,

यमस्य=संयमी पुरुष के, **पितृणाम्**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पुरुषों के, **देवस्य सवितुः**=देववृत्ति का बनकर निर्माणात्मक कार्यों में लगे हुए पुरुष के **भागः स्थ**=भाग हो। ये रेतःकण इन 'अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुण, मित्रावरुण, यम, पितर व देवसविता' में ही सुरक्षित रहते हैं। 'अग्नि' आदि बनना ही वीर्यरक्षण का साधन होता है। २. हे (देवीः आपः=) दिव्य गुणयुक्त रेतःकणो! आप **अपां शुक्रम्**=कर्मों में लगे रहनेवाली प्रजाओं का वीर्य हो। आप **अस्मासु**=हममें **वर्चः धत्त**=वर्चस् को—रोगनिवारणशक्ति को धारण करो। मैं **वः**=आपको **प्राजपतेः धाम्ना**=प्रजारक्षक प्रभु के तेज के हेतु से—प्रजापति के तेज को प्राप्त करने के लिए **अस्मै लोकाय**=इस लोक के हित के लिए **सादये**=अपने में बिठाता हूँ। वीर्यरक्षण द्वारा मनुष्य प्रजापति के धाम को प्राप्त करता है और लोकहित के कार्यों में प्रवृत्त रहता है।

भावार्थ—रेतःकणों के रक्षण के लिए आवश्यक है कि हम प्रगतिशील हों(अग्नि), जितेन्द्रिय बनें (इन्द्र), पापवृत्ति से बचें (वरुण), स्नेह व द्वेष निवारणवाले हों (मित्रावरुण), संयमी बनें (यम), रक्षणात्मक व देववृत्ति के बनकर उत्पादक कार्यों में प्रवृत्त हों(देव सविता)। ये रेतःकण ही कार्यनिरत प्रजाओं का वीर्य हैं, ये हमें रोगनिवारणशक्ति प्राप्त कराते हैं और प्रभु के तेज से तेजस्वी बनाकर लोकहित के कार्यों के योग्य बनाते हैं।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—१५-१८, २१ **दशपदात्रैष्टुब्गर्भाऽतिधृतिः**
(१९, २० कृतिः)

रेतःकणों का महत्त्व

यो व॑ आपोऽपां भा॒गो३॑प्स्व१॑न्तर्यं॑जु॒ष्यो ∫ दे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
ते॒न त॒मभ्यति॑सृजामो॒ यो३॑स्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒ऽनेन॒ ब्रह्म॑णा॒ऽनेन॒ कर्म॑णा॒ऽनया॑ मे॒न्या॥ १५॥
यो व॑ आपोऽपामू॒र्मिर॒प्स्व१॑न्तर्यं॑जु॒ष्यो ∫ दे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
ते॒न त॒मभ्यति॑सृजामो॒ यो३॑स्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒ऽनेन॒ ब्रह्म॑णा॒ऽनेन॒ कर्म॑णा॒ऽनया॑ मे॒न्या॥ १६॥
यो व॑ आपोऽपां व॒त्सो३॑प्स्व१॑न्तर्यं॑जु॒ष्यो ∫ दे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
ते॒न त॒मभ्यति॑सृजामो॒ यो३॑स्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒ऽनेन॒ ब्रह्म॑णा॒ऽनेन॒ कर्म॑णा॒ऽनया॑ मे॒न्या॥ १७॥
यो व॑ आपोऽपां वृ॒ष॒भो३॑प्स्व१॑न्तर्यं॑जु॒ष्यो ∫ दे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।
ते॒न त॒मभ्यति॑सृजामो॒ यो३॑स्मान्द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒ऽनेन॒ ब्रह्म॑णा॒ऽनेन॒ कर्म॑णा॒ऽनया॑ मे॒न्या॥ १८॥
यो व॑ आपोऽपां हिर॑ण्यग॒र्भो३॑प्स्व१॑न्तर्यं॑जु॒ष्यो ∫ दे॒व॒यज॑नः।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि।

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयाऽनेन ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या॥ १९॥
यो वं आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्वन्तर्यजुष्यो ∫ देवयजनः।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि।
तेन तमभ्यतिसृजामो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयाऽनेन ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या॥ २०॥
यो वं आपोऽपामग्रयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या ∫ देवयजनाः।
इदं तानति सृजामि तान्माऽभ्यवनिक्षि।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
तं वधेयं तं स्तृषीयाऽनेन ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या॥ २१॥

१. हे **आपः**=रेतःकणो! **यः**=जो **वः**=आपका **अपाम्**=प्रजाओं का **भागः**=पूजन (भज सेवायाम्) है, अर्थात् आपके रक्षण से प्रजाओं के अन्दर जो प्रभु-पूजन का भाव उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जो **अपाम् ऊर्मिः**=प्रजाओं का प्रकाश है (उर्मि light), आपके रक्षण से जो प्रकाश उत्पन्न होता है। जो **अपां वत्सः**=(वदति) प्रजाओं का ज्ञान की वाणियों का उच्चारण है। **अपां वृषभः**=प्रजाओं में सुखों का सेचन है (वृष् सेचने)। **अपां हिरण्यगर्भः**=प्रजाओं में ज्योति को धारण करना है। **अपां अश्मा**=प्रजाओं का पाषाण-तुल्य दृढ़-शरीर है, **पृश्निः**=अंग-प्रत्यंग में रसों का संस्पर्श है (संस्प्रष्टा रसान्—नि० २।१४) तथा **दिव्यः**=देववृत्तियों का जन्म है और अन्ततः **अपां अग्रयः**=प्रजाओं के अन्दर आगे बढ़ने की वृत्तियाँ हैं। ये सब **अप्सु अन्तः**=प्रजाओं के अन्दर **यजुष्यः**=यजुष्य हैं—यज्ञात्मकवृत्तियों को जन्म देने के लिए उत्तम हैं। ये सब बातें **देवयजनः**=उस देव के साथ—प्रभु के साथ मेल करानेवाली हैं। २. अतः **इदम्** (इदानीम्)=अब मैं **तम् उ**=उस रेतःकण (वीर्यशक्ति) को ही **अतिसृजामि**=अतिशयेन अपने अन्दर उत्पन्न करता हूँ। **तं मा अभि अवनिक्षि**=उसका मैं सफ़ाया न कर दूँ—उसे अपने अन्दर सुरक्षित करूँ (अवनिज् wipe off) **तेन**=उस वीर्यशक्ति के द्वारा **तम् अभि अतिसृजामः**=उसे अपने से दूर करते हैं (अतिसृज् part with) **यः**=जो **अस्मान् द्वेष्टि**=हम सबके प्रति अप्रीतिवाला है और परिणामतः **यं वयं द्विष्मः**=जिससे हम भी प्रीति नहीं कर सकते। **तम्**=उसे **अनेन ब्रह्मणा**=इस ज्ञान के द्वारा **अनेन कर्मणा**=इस यज्ञादि कर्म के द्वारा तथा **अनया मेन्या**=इस उपासनारूप वज्र के द्वारा (मेनिः—मन्) **तं वधेयम्**=उस समाज-विद्विष्ट को समाप्त कर दूँ, **तं स्तृषीय**=उसे नष्ट कर दूँ (स्तृ to kill)।

भावार्थ—रेतःकणों के रक्षण से हममें 'उपासना के भाव, प्रकाश, ज्ञान की वाणियों का उच्चारण, सुख, ज्योति, दृढ़ रसमय दिव्यता व प्रगतिशीलता' की उत्पत्ति होती है, अतः रेतःकणों का रक्षण आवश्यक है। इससे द्वेषभाव भी विनष्ट हो जाता है।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'दुरित व अंहस्' से दूर

यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम।
आपो मा तस्मात्सर्वस्मादुरितात्पान्त्वंहसः॥ २२॥

१. तीन साल की आयु तक तो पाप लगता ही नहीं, परन्तु **त्रैहायणात् अर्वाचीनम्**=तीन साल की आयु के पश्चात् (on this side of) **यत् किञ्च**=जो कुछ भी **अनृतं उदिम**=हमने अनृत

(असत्य) बोला है **आपः**=ये रेतःकण **तस्मात् सर्वस्मात् दुरितात्**=उस सब दुरित (दुराचरण) से तथा **अंहसः**=उस दुरित से जनित चिन्ता से—कष्ट से (trouble, anxiety, care) **मा पान्तु**=मुझे रक्षित करें।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण हमें दुरितों व कष्टों से मुक्त करता है।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अरिष्टाः सर्वहायसः

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत्॥ २३॥

१. हे रेतःकणो! (आपः) मैं **वः**=तुम्हें **समुद्रम्**=(स मुद्) सर्वदा आनन्दमय उस प्रभु की ओर **प्रहिणोमि**=भेजता हूँ। तुम्हारे रक्षण के द्वारा ही तो मुझे प्रभु को पाना है। तुम **स्वां योनिम् अपि इतन**=अपने उत्पत्तिस्थान इस शरीर की ओर ही गतिवाले होओ। तुम शरीररूप घर में ही सुरक्षित रहो। २. तुम्हारे रक्षण के द्वारा हम **अरिष्टाः**=अहिंसित हों—रोगों से आक्रान्त न हों। **सर्वहायसः**=पूर्ण वर्षोंवाले व शतवर्षपर्यन्त जीवनवाले हों। **च**=तथा **नः**=हमें **किञ्चन**=कुछ भी **मा आममत्**=पीड़ित करनेवाला न हो—हम किसी रोग के शिकार न हों।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा हम 'रोगों से अहिंसित—शतवर्षपर्यन्त जीवनवाले हों' तथा इनका रक्षण हमें अन्ततः प्रभु को प्राप्त करानेवाला हो।

ऋषिः—**सिन्धुद्वीपः**॥ देवता—**आपः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री**॥

'रिप्रं, एनः, दुरितं, मलम्' (अव प्रवहन्तु)

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु॥ २४॥

१. **आपः**=ये रेतःकण **अरिप्राः**=दोषरहित हैं। ये रेतःकण **रिप्रम्**=दोष को **अस्मत् अप**=हमसे दूर करें। ये **सुप्रतीकाः**=(प्रतीक limb, member) शोभन अंगोंवाले—सब अंगों को सुन्दर बनानेवाले रेतःकण **अस्मत्**=हमसे **एनः**=पापों को **प्रवहन्तु**=दूर बहा ले-जाएँ। **दुरितम्**=दुराचरण को ये हमसे **प्र** (वहन्तु)=दूर करें। **दुःष्वप्न्यम्**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत **मलम्**=मल को **प्र (वहन्तु)**=हमसे दूर बहा दें।

भावार्थ—रेतःकणों का रक्षण हमसे 'दोष, पाप, दुराचरण व दुःष्वप्न्य मलों' को दूर करनेवाला होता है।

इन रेतःकणों के रक्षण के उद्देश्य से यह कृषि आदि उत्पादक कर्मों में प्रवृत्त रहता है। कृषि में हल का स्थान प्रमुख है। इसके फाल को ही 'कुशिक' (ploughshare) कहते हैं। यह कुशिक का ही हो जाता है (कुशिकस्य अयं), अतः 'कौशिक' कहलाता है। यही अगले (२५-३५) मन्त्रों का ऋषि है—

ऋषिः—**कौशिकः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी**॥

पृथिवीसंशितः अग्रितेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्रितेजाः।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ २५॥

१. तू **विष्णोः**=एक पवित्र व्यक्ति (A pious man) के **क्रमः**=पराक्रमवाला **असि**=है (क्रमः अस्यास्तीति क्रमः)। **'सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्'**=ज्ञानी लोग कृषि आदि निर्माण के कार्यों में ही प्रवृत्त होते हैं। वेद का आदेश भी तो यही है कि **'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व'** पासों से मत खेल, खेती ही कर। इसी से तू **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **पृथिवीसंशितः**=इस शरीररूप पृथिवी में तू तीव्र किया गया है। **अग्नितेजाः**=अग्नि के समान तेजस्वी है। २. तू निश्चय कर कि **पृथिवीम् अनु**=इस शरीररूप पृथिवी का लक्ष्य करके—इसे उत्तम, स्वस्थ बनाने के उद्देश्य से—**अहम्**=मैं **विक्रमे**=पराक्रम करता हूँ। **पृथिव्याः**=इस शरीररूप पृथिवी से **तं निर्भजामः**=उस रोग आदि को दूर भगाते हैं (put to flight) **यः अस्मान् द्वेष्टि**=जो हमसे अप्रीति करता है, **यं वयं द्विष्मः**=जिससे हम प्रेम नहीं रखते, **सः मा जीवीत्**=वह हमारा शत्रु न जीए। **तं प्राणः जहातु**=उसे प्राण छोड़ जाएँ।

भावार्थ—कृषि आदि कर्मों में लगे रहने से शरीर स्वस्थ बनता है। अग्नि के समान तेजस्विता प्राप्त होती है। उससे रोग व वासनारूप शत्रु नष्ट हो जाते हैं।

ऋषिः—**कौशिकः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी**॥

अन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ २६॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू एक पवित्र व्यक्ति के पराक्रमवाला है। इसी से **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **अन्तरिक्षसंशितः**=तू हृदयरूप अन्तरिक्ष में तीव्र किया गया है, **वायुतेजाः**=वायु के समान तेजस्वी बना है। २. तू निश्चय कर कि **अन्तरिक्षम् अनु**=हृदयान्तरिक्ष को लक्ष्य करके **अहम्**=मैं **विक्रमे**=विशिष्ट पुरुषार्थ करता हूँ और **अन्तरिक्षात्**=हृदयान्तरिक्ष से उन शत्रुओं को दूर भगाता हूँ। **तम् निर्भजामः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—कृषि आदि कर्मों में प्रवृत्त रहकर मैं हृदय में पवित्र बनता हूँ। मेरे हृदय में वायु(वा गतिगन्धनयोः) गति द्वारा बुराई के हिंसन का भाव रहता है और मैं निर्द्वेष बनता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी**॥

द्यौसंशितः सूर्यतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ २७॥

१. तू **विष्णोः क्रमः असि**=एक पवित्र व्यक्ति के पराक्रमवाला है। **द्यौसंशितः**=मस्तिष्करूप द्युलोक में तीक्ष्ण किया गया है। **सूर्यतेजाः**=सूर्य के समान तेजस्वी हुआ है। २. तू निश्चय कर कि **अहम्**=मैं **दिवम् अनु**=मस्तिष्करूप द्युलोक को लक्ष्य बनाकर **विक्रमे**=विशिष्ट पुरुषार्थ करता हूँ। **तम् निर्भजामः०** (शेषपूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र कर्मों में व्यापृत हुआ-हुआ मैं मस्तिष्करूप द्युलोक को ज्ञानसूर्य से दीप्त करता हूँ। मेरे कर्मों का लक्ष्य इस द्युलोक को दीप्त बनाना होता है। इस दीप्ति में वासनान्धकार का विलय हो जाता है।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

दिक्संशितो मनस्तेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ २८॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पुरुषार्थवाला है, इसी से **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **दिक् संशितः**=इस शरीर-पिण्ड की 'पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण' सब दिशाओं में तू तीव्र बना है। **मनस्तेजाः**=सभी दृष्टियों से स्वस्थ होने के कारण तू मानस तेज को प्राप्त हुआ है—तेजस्वी मनवाला बना है। २. तू निश्चय कर कि **अहम्**=मैं **दिशः अनु**=इन सब दिशाओं का लक्ष्य करके सभी प्रकार से स्वास्थ्य के लिए **विक्रमे**=पुरुषार्थवाला होता हूँ। **तम्०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र कर्मों के द्वारा, शरीर की सब दिशाओं को सशक्त बनाकर, मनस्वी होता हुआ मैं सब शत्रुओं को परास्त करता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

आशासंशितो वाततेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ २९॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू एक पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, अतएव **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **आशासंशितः**=इस शरीर-पिण्ड के सम्पूर्ण प्रदेशों में (आशा=space, region) तू तीव्र बना है। **वाततेजाः**=वात (गति) के तेजवाला है। सम्पूर्ण प्रदेश में सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों की गति ठीक से हो रही है। २. तू निश्चय कर कि **आशाः अनु**=शरीरस्थ सम्पूर्ण प्रदेशों का लक्ष्य करके **अहं विक्रमे**=मैं विशिष्ट पुरुषार्थवाला होता हूँ। **तम् निर्भजामः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र कर्मों में व्यस्त रहने के द्वारा मैं शरीर के सम्पूर्ण प्रदेश को सशक्त बनाता हूँ। वहाँ से रोगरूप शत्रुओं को दूर भगाता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

ऋक्ससंशितः सामतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३०॥

१. तू **विष्णोः क्रमः असि**=पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, अतएव **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **ऋक् संशितः**=विज्ञान से तीक्ष्ण शक्तियोंवाला होता हुआ तू **सामतेजाः**=उपासना के तेजवाला है। विज्ञान ने तेरी शक्तियों को तीक्ष्ण किया है और उपासना ने तुझे प्रभु के तेज से तेजस्वी बनाया है। २. तू निश्चय कर कि इन **ऋचः अनु**=विज्ञानों का लक्ष्य करके ही मैं **विक्रमे**=विशिष्ट पुरुषार्थवाला होता हूँ। **तम् निर्भजामः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र कर्मों में लगे रहने से, विज्ञान व उपासना की वृद्धि के द्वारा हम तेजस्वी

बनते हैं और शत्रुओं को परास्त करते हैं।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३१॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, अतएव **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **यज्ञसंशितः**=यज्ञों के द्वारा तीक्ष्ण शक्तिवाला बना है, और **ब्रह्मतेजाः**=वेदज्ञान के तेजवाला हुआ है। २. तू निश्चय कर कि **यज्ञम् अनु**=यज्ञों का लक्ष्य करके **अहम्**=मैं **विक्रमे**=विशिष्ट पुरुषार्थवाला होता हूँ। यज्ञ मुझे शक्ति सम्पन्न बनाते हैं, अतः मैं यज्ञों के सम्पादन के लिए विशिष्ट पुरुषार्थवाला होता हूँ। उस **यज्ञात्**=यज्ञ के द्वारा **तम्०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र पुरुषार्थ से पराक्रमवाला होता हुआ मैं यज्ञशील बनता हूँ और ज्ञान के तेज से तेजस्वी होकर मैं सब शत्रुओं को परास्त करता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

ओषधिसंशितः सोमतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३२॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है। इस पराक्रम से ही **सपत्नहा**=तू रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **ओषधिसंशितः**=वानस्पतिक (ओषधि) भोजन द्वारा तू तीक्ष्ण शक्तिवाला हुआ है और **सोमतेजाः**=वानस्पतिक भोजन से उत्पन्न सोम से तेजस्वी बना है। २. तू यह निश्चय कर कि **अहम्**=मैं **ओषधीः अनु विक्रमे**=ओषधि-वनस्पतियों को प्राप्त करने के लक्ष्य से पुरुषार्थवाला होता हूँ और **ओषधिभ्यः**=इन ओषधियों से **तम्०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—पवित्र कर्मों को करते हुए हम रोगादि शत्रुओं को विनष्ट करते हैं। ओषधियों के प्रयोग से उत्पन्न सोम(वीर्य) द्वारा मैं तेजस्वी बनता हूँ और इस तेजस्विता के द्वारा निर्द्वेष बनता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी** ॥

अप्सुसंशितः वरुणतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽप्सुसंशितो वरुणतेजाः।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३३॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, अतएव **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **अप्सुसंशितः**=रेतःकणों में—रेतःकणों के रक्षण द्वारा—तीक्ष्ण शक्तिवाला हुआ है। **वरुणतेजाः**=निर्द्वेष पुरुष के—द्वेष आदि का निवारण करनेवाले

पुरुष के तेजवाला हुआ है। २. तू निश्चय कर कि **अहम्**=मैं **अपः अनु विक्रमे**=रेतःकणों का लक्ष्य करके पुरुषार्थवाला बना हूँ। रेतःकणों के रक्षण के लिए मैंने पुरुषार्थ किया है और **अद्भ्यः**=इन रेतःकणों के द्वारा **तम्०** (शेष पूर्ववत्)।

भावार्थ—पवित्र कर्मों में व्यापृत होकर मैं वीर्यकणों का रक्षण करता हुआ निर्द्वेष जीवनवाला बनता हूँ। इनके रक्षण से ही शत्रुओं को दूर भगाता हूँ।

ऋषिः—**कौशिकः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी**॥

कृषिसंशितोऽन्नतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३४॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, **सपत्नहा**=कर्मों में व्यापृत रहने के द्वारा रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **कृषिसंशितः**=कृषिकर्म द्वारा तीक्ष्ण शक्तिवाला बना है और **अन्नतेजाः**=कृषि से उत्पन्न अन्न के द्वारा तेजस्वी बना है। २. तू निश्चय कर कि **कृषिं अनु**=कृषि का लक्ष्य करके **अहं विक्रमे**=मैं पुरुषार्थवाला होता हूँ और इस **कृष्याः**=कृषिकर्म में लगे रहने के द्वारा **तम्०** (शेष पूर्ववत्)।

भावार्थ—हम पवित्र कर्मों को करते हुए कृषि से उत्पन्न अन्न का सेवन करते हुए तेजस्वी बनें और रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करें।

ऋषिः—**कौशिकः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**षट्पदायथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वरी**॥

प्राणसंशितः पुरुषतेजाः

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ ३५॥

१. **विष्णोः क्रमः असि**=तू पवित्र पुरुष के पराक्रमवाला है, इसप्रकार **सपत्नहा**=रोग व वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है। **प्राणसंशितः**=प्राणशक्ति के द्वारा तू तीक्ष्ण बना है, **पुरुषतेजाः**=तुझमें पुरुष को शोभा देनेवाली तेजस्विता है। २. तू निश्चय कर कि **अहम्**=मैं **प्राणम् अनु**=प्राणशक्ति का लक्ष्य करके **विक्रमे**=पुरुषार्थवाला होता हूँ। **प्राणात्**=इस प्राणशक्ति के द्वारा **तम्०** (शेष पूर्ववत्)।

भावार्थ—पवित्र कर्मों को करते हुए हम तीव्र प्राणशक्तिवाले बनें, हममें पुरुषोचित तेजस्विता हो। प्राणशक्ति का सम्पादन करते हुए हम निर्द्वेष बनें।

पवित्र कर्मों द्वारा तीव्रशक्तियुक्त यह पुरुष सब रोग—द्वेष व रोगरूप शत्रुओं को समाप्त करके 'ब्रह्मा' श्रेष्ठ पुरुष बनता है। अगले छह मन्त्रों का ऋषि यह ब्रह्मा ही है—

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशाक्वरातिजागतगर्भाऽष्टिः**॥

जितम्—उद्भिन्नम्

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य ष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ३६॥

१. गत मन्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करने पर **अस्माकं जितम्**=हमारी विजय होती है। **अस्माकम् उद्भिन्नम्**=हमारे द्वारा शत्रुओं का विनाश (Destroying) होता है। मैं **विश्वाः**=सब **अरातीः पृतनाः**=शत्रुभूत सेनाओं को **अभ्यष्ठाम्**=अभिभूत करता हूँ। २. यह ब्रह्मा निश्चय करता है कि **इदम्**=(इदानीम्) अब **अहम्**=मैं अपने शत्रुभूत **आमुष्यायणस्य**=अमुक पिता के तथा **अमुष्याः**=अमुक माता के **पुत्रस्य**=पुत्र के **वर्चः**=वर्चस् (Vitality) को **तेजः**=तेज को **प्राणम्**=प्राणशक्ति को व **आयुः**=जीवन को **निवेष्टयामि**=संवृत्त (Cover) कर देता हूँ। **इदम्**=अब **एनम्**=इसको **अधराञ्चम् पादयामि**=पाँव तले रौंद डालता हूँ—पादाक्रान्त कर लेता हूँ।

भावार्थ—हम विजयी बनें—शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले हों। शत्रुओं को सदा पादाक्रान्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती**॥

द्रविण—ब्राह्मणवर्चस्

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ३७॥

१. मैं **सूर्यस्य आवृतम् अनु आवर्ते**=सूर्य के आवर्तन के अनुसार आवर्तनवाला होता हूँ। सूर्य जिस प्रकार नियम से मार्ग पर आगे और आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मैं नियमित रूप से अपनी दिनचर्या में चलता हूँ। '**पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन**'=हे सूर्य! तेरे व्रत में हम कभी हिंसित न हों। **दक्षिणाम् आवृतम् अनु (आवर्ते)**=(दक्ष वृद्धौ) वृद्धि के कारणभूत इस आवर्तन के पीछे मैं आवर्तनवाला होता हूँ। २. **सा**=वृद्धि की कारणभूत सूर्य के समान पालिता होती हुई वह दिनचर्या **मे**=मेरे लिए **द्रविणं यच्छतु**=कार्यसाधक धन प्रदान करें।

भावार्थ—सूर्य की भाँति नियमितरूप से मार्ग पर चलते हुए हम धनों व ज्ञान के बलों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**३८ पुरउष्णिक्, ३९, ४१ आर्षीगायत्री ४० विराड्विषमागायत्री**॥

दिशाएँ, सप्तर्षि, ब्रह्म, ब्राह्मण

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते। ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ३८॥
सप्तऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ३९॥
ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ४०॥
ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ४१॥

१. मैं इन **ज्योतिषमतीः दिशः अभि आवर्ते**=ज्योतिर्मय दिशाओं की ओर आवर्तनवाला होता हूँ। प्रतिदिन सन्ध्या में इनका ध्यान करता हुआ इनसे 'आगे बढ़ने की (प्राची), नम्र बनने की (अवाची), इन्द्रियों को विषयों से वापस लौटाने की (प्रतीची) व ऊपर उठने की (उदीची)' प्रेरणा प्राप्त करता हूँ। २. इसी प्रकार मैं **सप्तऋषीन् अभि आवर्ते**=सात ऋषियों की ओर आवर्तनवाला होता हूँ। 'गोतम' ऋषि का स्मरण करके प्रशस्त इन्द्रियोंवाला (गावः इन्द्रियणि) बनता हूँ। 'भरद्वाज' का स्मरण मुझे शक्तिभरण का उपदेश देता है। 'विश्वामित्र' की तरह मैं भी सभी के प्रति प्रेमवाला होता हूँ। जाठराग्नि को न बुझने देकर 'जमदग्नि' बनता हूँ। उत्तम वसुओंवाला 'वसिष्ठ' बनता हुआ 'कश्यप'=ज्ञानी बनने के लिए यत्न करता हूँ और इसप्रकार 'अत्रि'='काम, क्रोध, लोभ' इन तीनों से ऊपर उठता हूँ। २. **ब्रह्म अभि आवर्ते**=मैं

अपने प्रत्येक अवकाश के क्षण में ज्ञान की ओर गतिवाला होता हूँ। इसी उद्देश्य से **ब्राह्मणान् अभि आवर्ते**=ज्ञानियों की ओर आवर्तनवाला होता हूँ। इनके सम्पर्क से ज्ञानी बनता हूँ। ये सब बातें मुझे द्रविण व ब्रह्मवर्चस् प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—दिशाओं से प्रेरणा लेता हुआ, सप्तऋषियों के समान आचरण करता हुआ, अवकाश के प्रत्येक क्षण को ज्ञान-प्राप्ति में लगाता हुआ, ज्ञानियों के संपर्क में चलता हुआ मैं 'द्रविण व ब्रह्मवर्चस्' प्राप्त करूँ।

यह 'द्रविण के साथ ब्रह्मवर्चस्' वाला व्यक्ति विशिष्ट हव्योंवाला होता है—उत्तम त्यागवाला बनता है। यज्ञों को करता हुआ यह 'विहव्य' अगले नौ मन्त्रों का ऋषि है—

ऋषिः—**विहव्यः**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आत्मनिरीक्षण द्वारा शत्रु का अन्वेषण व विनाश

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै।
व्यात्तं परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम्॥ ४२॥

१. **यम्**=जिस भी काम, क्रोध व लोभरूप शत्रु को **वयम्**=हम **मृगयामहे**=ढूँढ पाते हैं, **तम्**=उसे **वधैः**=हनन-साधन आयुधों द्वारा **स्तृणवामहै**=समाप्त करते हैं (स्तृणातिर्वधकर्मा—नि० २।१९)। २. **तम्**=उस शत्रु को **ब्रह्मणा**=वेदज्ञान द्वारा **परमेष्ठिनः**=परम स्थान में स्थित प्रभु की **व्यात्ते**=खुली (विशाल) दंष्ट्रा में **अपीपदाम**=प्राप्त कराते हैं, अर्थात् ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हुए प्रभु के सान्निध्य में उस शत्रु को समाप्त कर देते हैं।

भावार्थ—आत्मनिरीक्षण द्वारा हम अन्तःस्थ शत्रुओं को खोज-खोजकर ज्ञान की वाणियों के द्वारा प्रभु की समीपता में समाप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**विहव्यः**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'देवी सहीयसी' आहुतिः

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी॥ ४३॥

१. प्रातः-सायं प्रभु की उपासना ही प्रभु की दो दंष्ट्राएँ हैं। जो भी इस उपासना को अपनाता है उसके लिए यह उपासना शत्रु-नाशन का आयुध बन जाती है। यह **हेतिः**=शत्रुनाशन के लिए वज्र **वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्याम्**=सर्वहितकारी प्रभु की दो दाढ़ों से (प्रातः-सायं की जानेवाली उपासना से) **तम्**=उस शत्रु को **सम् अभि अधात्**=सम्यक् सब ओर से पकड़ ले (दबोच ले)। प्रातः-सायं प्रभु का उपासन हमें शत्रुओं से रक्षा का सामर्थ्य प्राप्त कराता है। २. **इयम्**=यह **देवी**=रोगों को जीतने की कामनावाली **सहीयसी**=रोगरूप शत्रुओं के मर्षण में उत्तम **समित्**=अग्निहोत्र में पड़नेवाली समिधा व **आहुतिः**=हव्य पदार्थ **तं प्सातु**=उस रोगरूप शत्रु को खा जाए। अग्निहोत्र के द्वारा रोगों का विनाश हो जाता है **'अग्नेर्होत्रेण प्रणुदा सपत्नान्'**।

भावार्थ—प्रातः-सायं प्रभु का उपासन करते हुए हम शत्रुओं को परास्त करें। अग्निहोत्र द्वारा रोगों को दूर भगानेवाले हों।

ऋषिः—**विहव्यः**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**त्रिपदागायत्रीगर्भाऽनुष्टुप्**॥

राज्ञो वरुणस्य बन्धः

राज्ञो वरुणस्य बन्धो ऽसि।
सो३ऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्नै प्राणे बंधान॥ ४४॥

१. **राज्ञः**=संसार के शासक व दीप्त **वरुणस्य**=पापों का निवारण करनेवाले प्रभु को तू **बन्धः असि**=अपने हृदयदेश में बाँधनेवाला है। तू प्रभु को हृदय में 'राजा वरुण' के रूप में स्मरण करता है, इसप्रकार स्मरण करता हुआ तू ऐसा ही बनता है। २. **सः**=वह तू **अमुम्**=उस अपने को **आमुष्यायणम्**=अमुक पिता के व **अमुष्याः पुत्रम्**=अमुक माता के पुत्र को **अन्ने प्राणे बधान**=अन्न व प्राण में बाँधनेवाला हो। तू अन्नों—वानस्पतिक भोजनों का ही सेवन करनेवाला बन तथा इन अन्नों को भी प्राणधारण के उद्देश्य से ही खा—अन्न का भी उतना ही सेवन कर जितना की प्राणधारण के लिए पर्याप्त हो।

भावार्थ—हम हृदय में उस दीप्त, पाप-निवारक प्रभु को स्थापित करने का प्रयत्न करें। अपने माता-पिता का स्मरण करते हुए, उनके नाम को कलङ्कित न होने देने के लिए प्राणशक्ति-रक्षण के हेतु वानस्पतिक भोजनों का सेवन करें।

ऋषिः—**विहव्यः** ॥ देवता—**प्रजापतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अन्न का ही सेवन

यत्ते॒ अन्नं॑ भुवस्पत आक्षि॒यति॑ पृथि॒वीमनु॑।
तस्य॑ नस्त्वं भुवस्पते सं॒प्रय॑च्छ प्रजापते॥ ४५॥

१. हे **भुवस्पते**=इस पृथिवी के स्वामिन् प्रभो! **यत् ते अन्नम्**=जो आपका यह अन्न **पृथिवीं अनु आक्षियति**=पृथिवी पर चारों ओर निवास करता है, अर्थात् इस पृथिवी से उत्पन्न होता है, हे **भुवस्पते**=पृथिवी के स्वामिन्! **प्रजापते**=प्रजाओं के रक्षक प्रभो! **तस्य**=उस अन्न के अंश को **त्वं**=आप **नः संप्रयच्छ**=हमारे लिए दीजिए।

भावार्थ—हम प्रभुकृपा से इस पृथिवी से उत्पन्न होनेवाले अन्न को प्राप्त करें और उसके द्वारा प्राणों का धारण करें।

ऋषिः—**विहव्यः** ॥ देवता—**प्रजापतिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दिव्याः अपः

अ॒पो दि॒व्या अ॑चायिषं॒ रसे॑न॒ सम॑पृक्ष्महि।
पय॑स्वानग्न॒ आग॑मं॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा॥ ४६॥
सं मा॑ऽग्ने॒ वर्च॑सा सृज॒ सं प्र॒जया॒ समायु॑षा।
वि॒द्युर्मे॑ अ॒स्य दे॒वा इन्द्रो॑ विद्यात्स॒ह ऋषि॑भिः॥ ४७॥

इन मन्त्रों का भाष्य अथर्व० ७।८९।१-२ पर देखिए।

ऋषिः—**विहव्यः** ॥ देवता—**प्रजापतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तप द्वारा यातुधानों को शीर्ण करना

यद॑ग्ने अ॒द्य मि॑थु॒ना श॒पात॒ो यद्वा॒चस्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त रे॒भाः।
म॒न्योर्मन॑सः शर॒व्या॒३॒ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातुधा॒नान्॥ ४८॥
परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातुधा॒नान्परा॑ऽग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि।
परा॒ऽर्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॑ शोशु॒चतः॑ शृणीहि॥ ४९॥

इन मन्त्रों का भाष्य अथर्व० ८।३।१२-१३ पर देखिए।

ऋषिः—**विहव्यः** ॥ देवता—**प्रजापतिः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

चतुर्भृष्टि वज्र

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान्।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे॥ ५०॥

१. **विद्वान्**=ज्ञानी (समझदार) बनता हुआ मैं **अस्मै शीर्षभिद्याय**=इस रोगरूप शत्रु के सिर को फोड़ देने के लिए **चतुर्भृष्टिम्**=(भ्रस्ज पाके) चारों ओर **अयः**=फालोंवाले व चारों ओर से भून डालनेवाले **अपां वज्रम्**=रेतःकणों से बने हुए वज्र को **प्रहरामि**=प्रहृत करता हूँ। **सः**=वह वज्र **अस्य**=इस शत्रु के **सर्वा अङ्गानि**=सब अंगों को **प्रशृणातु**=शीर्ण कर दे। **विश्वेदेवाः**=सब देव **मे तत्**=मेरे उस कार्य का **अनुजानन्तु**=समर्थन करनेवाले हों।

भावार्थ—रेतःकणों के रक्षण के द्वारा रोगरूप शत्रु के सिर का हम भेदन कर डालते हैं। दिव्यगुणों को अपनाते हुए हम वीर्यरक्षण कर पाते हैं और रोग-विनाश के कार्य में समर्थ होते हैं।

छठे सूक्त का ऋषि 'बृहस्पति' है—इसका देवता 'फालमणि' है—वीर्यशक्तिरूप मणि, जोकि सब रोगों व वासनाओं को विशीर्ण करती है (फल् विशरणे)। इसके रक्षण से ही ज्ञानाग्नि भी दीप्त होती है और इसप्रकार इसका रक्षक 'बृहस्पति' बनता है—ज्ञानी।

अथ त्रयोविंशः प्रपाठकः

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

न अरातीयु, न भ्रातृव्य, न दुर्हार्द, न द्विषन्

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः। अपि वृश्चाम्योजसा॥ १॥

१. वीर्यमणि के रक्षण के द्वारा उत्पन्न हुए-हुए **ओजसा**=ओजस् के द्वारा मैं **भ्रातृव्यस्य**=भ्रातृभाव से शून्य शत्रु के **शिरः**=सिर को **अपिवृश्चामि**=काट डालता हूँ। उस शत्रु के सिर को जोकि **अरातीयोः**=अराति की भाँति आचरण करता है, अर्थात् मैं अदानभावरूप शत्रु के सिर को काट डालता हूँ। **दुर्हार्दः द्विषतः**=दुष्ट हृदयवाले—द्वेष करनेवाले शत्रु के सिर को भी मैं काट डालता हूँ।

भावार्थ—वस्तुतः वीर्यमणि के रक्षित होने पर मनुष्य को वह ओज प्राप्त होता है, जिससे वह उदारवृत्ति का, उत्तम हृदयवाला, द्वेषशून्य तथा भ्रातृभाव से भूषित जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मन्थ, रस, वर्चस्

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद्रसेन सह वर्चसा॥ २॥

१. **फालात्**=(फल् विशरणे) रोगों व वासनाओं को विनष्ट करने के उद्देश्य से **जातः**=उत्पन्न हुई-हुई **अयं मणिः**=यह वीर्यमणि **मह्यम्**=मेरे लिए **वर्म करिष्यति**=कवच का कार्य करेगी—कवच बनेगी। २. यह **वर्चसा सह**=वर्चस्—रोगनिवारकशक्ति के साथ **मन्थेन**=सूक्ष्म तत्त्वों के मन्थन—आलोडन—की शक्ति तथा **रसेन**=मानस आनन्द से **पूर्णः**=भरी हुई **मा आगमत्**=मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्यमणि कवच बनती है—यह रोगों व वासनाओं के आक्रमण को विफल करती है। सूक्ष्म तत्त्वों के आलोडन की शक्ति को, मानस आनन्द व शरीर में वर्चस् (प्राणशक्ति) को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**आपः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'जीवलाः शुचयः' आपः

यत्त्वा शिक्वः पराऽवधीत्तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम्॥ ३॥

१. **यत्**=यदि **त्वा**=तुझे **शिक्वः**=छीलनेवाला (शिञ् निशाने to make thin) **तक्षा**=बढ़ई **हस्तेन**=हाथ से **वास्या**=बसूले (chisel) से—हाथ में लिये हुए बसूले से—**परा अवधीत्**=बहुत अधिक हिंसित करता है—घाव कर देता है तो भी ये **जीवलाः**=जीवन-शक्ति प्राप्त करानेवाले **शुचयः**=मानस पवित्रता के कारणभूत **आपः**=वीर्यकण (आपः रेतो भूत्वा०) **शुचिं त्वा**=पवित्र मनवाले—हिंसक के प्रति भी विद्वेषशून्य तुझे **तस्मात्**=उस घाव से **पुनन्तु**=पवित्र कर दें—मुक्त कर दें।

भावार्थ—वीर्यकण शरीर में जीवन-शक्ति को तथा मन में पवित्रता को प्राप्त करानेवाले हैं। यदि कोई बसूले से गहरा घाव भी कर दे, तो भी ये वीर्यकण उस घाव को शीघ्र भर देते हैं और हमारे मनों को आक्रान्ता के प्रति रोषवाला नहीं होने देते।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

'हिरण्यस्त्रक्' मणि

हिरण्यस्त्रग्यं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्। गृहे वसतु नोऽतिथिः॥ ४॥

१. शरीर में सुरक्षित **अयं मणिः**=यह वीर्यमणि **हिरण्यस्त्रक्**=हितरमणीय तत्त्वों को उत्पन्न करनेवाला है (सृज्)। यह **श्रद्धाम्**=हृदय में श्रद्धा को, **यज्ञम्**=हाथों में यज्ञों (श्रेष्ठतम् कर्मों) को, तथा **महः**=शरीर में तेजस्विता को **दधत्**=धारण करता हुआ **अतिथिः**=(अत सातत्यगमने) शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गतिवाला होता हुआ **नः गृहे**=हमारे शरीरगृह में **वसतु**=निवास करे।

भावार्थ—यह वीर्यमणि शरीर में सुरक्षित होने पर हितरमणीय तत्त्वों को जन्म देती है। यह हृदय में श्रद्धा, हाथों में यज्ञ तथा शरीर में तेज को स्थापित करती है। प्रभुकृपा से यह हमारे शरीर-गृह में ही, गति करती हुई, निवास करे।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

घृतं, सुरां, मधु, अन्नम्-अन्नम्

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे। स नः पितेव पुत्रेभ्यः
श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य॥ ५॥

१. **तस्मै**=उस वीर्यमणि के लिए हम **घृतम्**=घृत को **सुराम्**=(अपां च वा एष ओषधीनां च रसो यत्सुरा—श० १२।८।१।४) जल व ओषधियों के रस को, **मधु**=शहद को तथा **अन्नं अन्नम्**=खाने योग्य सात्त्विक अन्न को **क्षदामहे**=(क्षद भक्षणे) खाते हैं। इनके द्वारा उत्पन्न वीर्यमणि शरीर में सुरक्षित रहता है। २. **सः**=वह **मणिः**=वीर्यमणि **देवेभ्यः**=दिव्य गुणों के विकास के लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वःश्वः**=अगले-अगले दिन **एत्य**=प्राप्त होकर **नः**=हमें उसी प्रकार **श्रेयः श्रेयः चिकित्सतु**=उत्तम कल्याणों में निवास कराए, **इव**=जैसे **पिता**=पिता **पुत्रेभ्यः**=पुत्रों के लिए उत्तम निवास प्राप्त कराता है।

भावार्थ—उत्तम अन्नों द्वारा उत्पन्न वीर्य शरीर में सुरक्षित रहता है। यह हमें उसी प्रकार कल्याण में निवास कराता है जैसे पिता पुत्रों को। सुरक्षित हुआ-हुआ वीर्य हमारे अन्दर दिव्य गुणों का वर्धन करता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाविराट्शक्वरी** ॥

अग्नि के लिए आज्य (कान्ति व गति)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं
भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ६॥

१. **बृहस्पतिः खदिरम्**=ज्ञान का अधिष्ठाता (ज्ञानी) पुरुष **यम्**=जिस **फालम्**=रोगों को विशीर्ण करनेवाली **घृतश्चुतम्**=शरीर में दीप्ति को क्षरित करनेवाली, **उग्रम्**=तेजस्वी **खदिरम्**=स्थिरता को पैदा करनेवाली व वासनारूप शत्रुओं को हिंसित करनेवाली **मणिम्**=वीर्यरूप मणि को **ओजसे**= ओजस्विता की प्राप्ति के लिए **अबध्नात्**=अपने अन्दर बाँधता है २. **तम्**=उस मणि को **अग्निः**=प्रगतिशील जीव **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में बाँधता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इसके लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **आज्यं दुहे**=कान्ति व गति को प्रपूरित करती है—इसे कान्तिमय व गतिशील बनाती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वं**=तू **द्विषतः जहि**=सब अप्रीतिकर शत्रुओं—रोगों व वासनाओं को विनष्ट कर।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष ओजस्विता की प्राप्ति के लिए इस वीर्यमणि को अपने अन्दर धारण करता है। प्रगतिशील जीव इसे अपना कवच बनाता है। वह मणि इसके लिए कान्ति व गति देती है। इससे यह अप्रीतिकर रोग व शत्रुओं का नाश करता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अष्टपदाऽष्टिः** ॥

इन्द्र के लिए बल

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्या ∫ य कम्।
सो अस्मै बलमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ७॥

१. **बृहस्पतिः.....खदिरम्**=(देखें मन्त्र छह में) २. **तम्**=उस मणि को **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय पुरुष **ओजसे**=ओजस्विता के लिए तथा **वीर्याय**=बल के लिए **कम्**=सुख से **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में धारण करता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इसके लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से **बलं दुहे**=बल को प्रपूरित करती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वं**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—जितेन्द्रिय पुरुष वीर्यमणि को कवच के रूप में धारण करता है। यह मणि इसे बलवान् बनाती है। तब यह अप्रीतिकर शत्रुओं का विनाश कर पाता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अष्टपदाऽष्टिः** ॥

सोम के लिए वर्चस्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे।
सो अस्मै वर्च इदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ८॥

१. **ओजसे**=ओजस्विता के लिए **बृहस्पतिः खदिरम्**=(देखें मन्त्र छह में) २. **तम्**=उस मणि को **सोमः**=शान्तस्वभाववाला व्यक्ति **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में धारण करता है। जैसे प्रगतिशीलता व जितेन्द्रियता वीर्यरक्षण में सहायक होती हैं, इसी प्रकार शान्तस्वभाव भी वीर्यरक्षण में साधन होता है। यह सोम इसे **महे**=महत्त्व के लिए, **श्रोत्राय**=श्रवणशक्ति के लिए

व **चक्षसे**=दृष्टिशक्ति के लिए धारण करता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इसके लिए **इत्**=निश्चय से **वर्चः**=वर्चस् को—प्राणशक्ति को **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **दुहे**=प्रपूरित करती है। **तेन**=उससे **त्वम्**=तू **द्विषतः जहि**=अप्रीतिकर शत्रुओं को नष्ट करनेवाला बन।

भावार्थ—सोम (शान्त स्वभाव) और वीर्य-रक्षण द्वारा वर्चस्वी बनकर हम अप्रीतिकर शत्रुओं को नष्ट कर डालें।

ऋषिः—**बृहस्पतिः**॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः**॥ छन्दः—**अष्टपदाऽष्टिः**॥

सूर्य के लिए भूति

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद्दिशः।
सो अस्मै भूतिमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ९॥

१. **बृहस्पतिः खदिरम् ओजसे**=(देखें मन्त्र छह में) २. **तम्**=उस वीर्यमणि को **सूर्यः**=सूर्यवत् निरन्तर गतिशील कर्त्तव्यकर्मपरायण मनुष्य **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में धारण करता है। **तेन**=उससे वह **इमा दिशः अजयत्**=इन दिशाओं का विजय करता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इसके लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वःश्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से **भूतिम्**='स्वास्थ्य, नैर्मल्य व ज्ञान' के ऐश्वर्य को **दुहे**=प्रपूरित करती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—वीर्यमणि को रक्षित करता हुआ कर्त्तव्यकर्मपरायण पुरुष भूति को प्राप्त करता है तथा अप्रीतिकर शत्रुओं का नाश कर देता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः**॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः**॥ छन्दः—**नवपदाधृतिः**॥

चन्द्रमा के लिए श्री

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्दानवानां हिरण्ययीः।
सो अस्मै श्रियमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १०॥

१. **बृहस्पतिः खदिरम् ओजसे**=(देखें मन्त्र छह में) २. **तम्**=उस मणि को **बिभ्रत्**=धारण करता हुआ **चन्द्रमाः**=आह्लादमय स्वभाववाला पुरुष **असुराणाम्**=औरों को विनष्ट करनेवाले (अस् क्षेपणे) **दानवानाम्**=छेदन-भेदन के स्वभाववाले पुरुषों की **हिरण्ययीः**=विलास की ज्योति से जगमगाती **पुरः**=पुरियों को **अजयत्**=जीतता है, अर्थात् यह विलास में न फँसता हुआ औरों का छेदन-भेदन व विनाश नहीं करता। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इस आह्लादमय स्वभाववाले पुरुष के लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वःश्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से **श्रियम्**=श्री को **दुहे**=प्रपूरित करती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—आह्लादमय स्वभाववाला पुरुष इस वीर्यमणि का रक्षण करता हुआ आसुरभावों से ऊपर उठता है। श्री को प्राप्त करके यह शत्रुओं को शीर्ण कर डालता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः**॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

वाजिनम् (Strength)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ११॥

१. **बृहस्पतिः**=ज्ञानी पुरुष **यं मणिम्**=जिस वीर्यरूप मणि को **अबध्नात्**=अपने शरीर में ही बद्ध करता है, जिससे **आशवे**=शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त हो सके तथा **वाताय**=गति द्वारा सब बुराइयों का हिंसन हो जाए (वा गतिगन्धनयोः)। २. **सः**=वह मणि **अस्मै**=इस बृहस्पति के लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **वाजिनं दुहे**=वीरता (Heroism, strength) को, शक्ति को प्रपूरित करती है। **तेन**=उस वीरता के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर रोगों व वासनारूप शत्रुओं को **जहि**=नष्ट कर।

भावार्थ—क्रियाशील बनकर वीर्यरक्षण द्वारा शक्तिशाली होते हुए हम शत्रुओं को शीर्ण कर दें।

ऋषिः—**बृहस्पतिः**॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः**॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी**॥

महः

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तेनेमां मणिना कृषिमश्विनाविभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १२॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तेन मणिना**=उस मणि के द्वारा—वीर्यरूप मणि को अपने में रक्षित करने के द्वारा **अश्विनौ**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले नर-नारी **कृषिम् अभिरक्षतः**=कृषि का रक्षण करते हैं (अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व०)—सट्टे आदि के कामों में रुचिवाले न होकर श्रम-साध्य कर्मों द्वारा ही धनार्जन करते हैं। **सः**=वह मणि भी **भिषग्भ्याम्**=वीर्यरक्षण द्वारा रोगों का प्रतीकार करनेवाले इन वैद्यभूत नर-नारियों के लिए **महः**=तेजस्विता को **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **दुहे**=प्रपूरित करती है। **तेन**=उस तेजस्विता से **त्वम्**=तू **द्विषतः जहि**=इन अप्रीतिकर शत्रुओं को विनष्ट कर।

भावार्थ—वीर्यरक्षण से मनुष्य में कृषि आदि श्रमसाध्य कर्मों में रुचि होती है। वे सट्टे के कामों में व लॉटरीज़ में नहीं पड़े रहते। ये तेजस्विता को प्राप्त कर नीरोग बनते हैं।

ऋषिः—**बृहस्पतिः**॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः**॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी**॥

सूनृता

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं बिभ्रत्सविता मणिं तेनेदमजयत्स्व ऽः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १३॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तं मणिम्**=उस वीर्यमणि को **बिभ्रत्**=धारण करता हुआ **सविता**=निर्माण के कर्मों में प्रेरित होनेवाला (सू=उत्पन्न करना) व्यक्ति **तेन**=उस मणि से **इदं स्वः**=इस सुख व प्रकाश का **अजयत्**=विजय करता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इसके लिए **सूनृताम्**=प्रिय सत्यवाणियों को **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **दुहे**= प्रपूरित करता है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा निर्माण के कार्यों में रुचिवाला यह व्यक्ति सुख व प्रकाश में निवास करता हुआ प्रिय, सत्य वाणियों को ही बोलता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी** ॥

अमृतम्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः।
स आभ्योऽमृतमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १४॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तं मणिम्**=उस वीर्यमणि को **बिभ्रतीः**=धारण करती हुई **आपः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली प्रजाएँ (आप् व्याप्तौ, आपो नारा इति प्रोक्ताः) **सदा**=सदा **अक्षिताः**=शरीरों में न क्षीण हुई-हुई **धावन्ति**=गतिवाली और शुद्ध-जीवनवाली होती है (धावु गतिशुद्ध्योः)। **सः**=वह मणि **आभ्यः**=इन प्रजाओं के लिए **इत्**=निश्चय से **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **अमृतं दुहे**=नीरोगता को प्रपूरित करती है। **तेन**=उस निरोगता के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—वीर्यरक्षण द्वारा हम अक्षीण व पवित्र-जीवनवाले बने रहते हैं। यह वीर्य हमें नीरोगता प्राप्त कराता है और शत्रुओं को विनष्ट करने के योग्य बनाता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी** ॥

सत्यम्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्।
सो अस्मै सत्यमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १५॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तम्**=उस **शंभुवम्**=शान्ति को उत्पन्न करनेवाली **मणिम्**=वीर्यमणि को **राजा**=अपने जीवन को बड़ा व्यवस्थित (regulated) करनेवाला **वरुणः**=सब पापों व अशुभाचरणों का वारण करेवाला साधक **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में धारण करता है। **सः**=वह मणि **अस्मै**=इस राजा व वरुण के लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से **सत्यं दुहे**=सत्य का प्रपूरण करती है—इस वीर्यमणि का रक्षक पुरुष असत्य नहीं बोलता। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषत्**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर।

भावार्थ—व्यवस्थित व सदाचारी जीवनवाले बनकर हम वीर्यमणि को धारण करें। यह 'शान्ति, सत्य व अशत्रुता' को प्राप्त कराएगी।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी** ॥

जितिम्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान्युधाऽजयन्।
स एभ्यो जितिमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १६॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तं मणिम्**=उस वीर्यमणि को **बिभ्रतः**=धारण करते हुए **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **युधा**=युद्ध के द्वारा **सर्वान् लोकान्**='पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक', अर्थात् शरीर, हृदय व मस्तिष्करूप सभी लोकों को **अजयन्**=जीतते हैं। ये इस मणि के द्वारा शरीर को स्वस्थ, मन को निर्मल व मस्तिष्क को दीप्त बनाते हैं। **सः**=वह मणि **एभ्यः**=इनके लिए **भूयः भूयः**=अधिकाधिक **श्वः श्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से

जितिम् दुहे=विजय को प्रपूरित करती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः**=अप्रीतिकर शत्रुओं को **जहि**=विनष्ट कर।

भावार्थ—देववृत्ति के बनकर वीर्यमणि का रक्षण करने पर हम इसके द्वारा विजय-ही-विजय प्राप्त करते हुए 'स्वस्थ, निर्मल व दीप्त' बनेंगे।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाशक्वरी** ॥

विश्वम्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्।
स आभ्यो विश्वमिदुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ १७॥

१. **बृहस्पतिः यं मणिम् अबध्नात्**=(मन्त्र ११ में द्रष्टव्य है) २. **तं शंभुवम् मणिम्**=उस शान्ति उत्पन्न करनेवाली वीर्यमणि को **देवताः**=देववृत्ति के पुरुष **प्रत्यमुञ्चन्त**=कवच के रूप में धारण करते हैं। **सः**=वह मणि **आभ्यः**=इन देवलोगों के लिए **भूयःभूयः**=अधिकाधिक **श्वःश्वः**=अगले-अगले दिन **इत्**=निश्चय से **विश्वं दुहे**=सम्पूर्ण (स्वस्थ) शरीर को प्रपूरित करती है। **तेन**=उस मणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः जहि**=अप्रीतिकर शत्रुओं को नष्ट कर डाल।

भावार्थ—देववृत्ति का पुरुष वीर्यरक्षण द्वारा सम्पूर्ण (स्वस्थ) शरीर प्राप्त करता है और सब शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋतवः, आर्तवाः, संवत्सरः

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत। संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति॥ १८॥

१. **ऋतवः**=(ऋ गतौ) ऋतुओं की भाँति नियमित गतिवाले—व्यवस्थित दिनचर्यावाले लोग **तम्**=उस वीर्यमणि को **अबध्नत**=अपने अन्दर बाँधते हैं। **आर्तवाः**=ऋतुओं के अनुसार चर्यावाले—ऋतुचर्या का ठीक से पालन करनेवाले **तम् अबध्नत**=उस वीर्यमणि को अपने अन्दर बद्ध करते हैं। २. **संवत्सरः**=(संवत्सर इव नियमेन वर्त्तमानः—द० य० २७।४८) वर्ष की तरह नियम में चलनेवाला और इसप्रकार अपने निवास को उत्तम बनानेवाला (सं वसति इति) व्यक्ति **तं बद्ध्वा**=इस वीर्यमणि को अपने में सुरक्षित करके **सर्वं भूतम्**=सब शरीरस्थ अङ्गों को—पदार्थों व तत्त्वों को **विरक्षति**=रक्षित करनेवाला होता है।

भावार्थ—हम ऋतुओं की भाँति नियमित दिनचर्यावाले बनकर, ऋतुचर्या का भी पालन करते हुए, वर्ष की भाँति नियम में वर्त्तमान होकर वीर्य का रक्षण करें। रक्षित वीर्य शरीरस्थ सब धातुओं व पदार्थों का रक्षण करेगा।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अन्तर्देशाः—प्रदिशः

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः॥ १९॥

१. **अन्तर्देशाः**=(अन्तः देशो येषाम्) अन्दर ही जिनका देश है—जो अन्तर्मुखी वृत्तिवाले हैं, वे इस वीर्यमणि को **अबध्नत**=शरीर में बाँधते हैं। **प्रदिशः**=(प्रकृष्टा दिक् येषाम्) हृदयस्थ प्रभु के प्रकृष्ट निर्देशों (प्रेरणाओं) को सुननेवाले लोग **तम् अबध्नत**=उस वीर्यमणि को अपने में बाँधते हैं। २. **प्रजापतिसृष्टः**=प्रजाओं के रक्षक प्रभु से उत्पन्न की गई यह **मणिः**=वीर्यमणि **मे**=मेरे **द्विषतः**:=अप्रीतिकर रोगरूप शत्रुओं को **अधरान् अकः**=पादाक्रान्त करती है—पाँव तले

रौंद देती है।

भावार्थ—हम अन्तर्मुखी वृत्तिवाले बनें—अन्तःस्थित प्रभु की प्रेरणा को सुनें। इसप्रकार वीर्यमणि को अपने अन्दर बद्ध करते हुए रोगों को कुचल देनेवाले बनें।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

अथर्वाणः, आथर्वणाः, अङ्गिरसः

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ २०॥

१. **अथर्वाणः**=(न थर्वति) स्थिर बुद्धिवाले—विषयों में डाँवाडोल न होनेवाले—पुरुष **अबध्नत**=वीर्यमणि को अपने में बद्ध करते हैं। **आथर्वणाः**=स्थिर प्रभु के उपासक (स्थाणु का संभजन करनेवाले) **अबध्नत**=इस वीर्यमणि को अपने में बाँधते हैं। २. **तैः**=इन अथर्वाओं व आथर्वणों से **मेदिनः**=स्नेहवाले—उनके संग में रहनेवाले—**अङ्गिरसः**=गतिशील (अगि गतौ) लोग **दस्यूनां पुरः**='काम, क्रोध, लोभ' रूप दस्युओं की नगरियों का **बिभिदुः**=विदारण (विध्वंस) कर देते हैं। हे जीव! **तेन**=उस वीर्यमणि के द्वारा **त्वम्**=तू भी **द्विषतः जहि**=इन अप्रीतिकर रोगरूप शत्रुओं को विनष्ट करनेवाला बन।

भावार्थ—हम स्थिरवृत्ति के बनकर तथा स्थिर (स्थाणु) प्रभु के उपासक बनकर और ऐसे ही लोगों के सम्पर्क में रहते हुए वासनाओं को विनष्ट कर डालें—वीर्य को अपने अन्दर सुरक्षित करें और रोगरूप शत्रुओं को नष्ट कर डालें।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥

धाता

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्य ∫ कल्पयत्। तेन त्वं द्विषतो जहि॥ २१॥

१. **तम्**=उस वीर्यमणि को **धाता**=अपनी इन्द्रियों का धारण (स्थिर) करनेवाला व्यक्ति **प्रत्यमुञ्चत**=कवच के रूप में धारण करता है। **सः**=वह सुरक्षित वीर्यमणि **भूतम्**=इस उत्पन्न शरीर को **व्यकल्पयत्**=विशेषरूप से सामर्थ्यवाला बनाता है (क्लृप् सामर्थ्ये)। प्रभु कहते है कि हे जीव! **तेन**=इस वीर्यमणि के द्वारा **त्वम्**=तू **द्विषतः जहि**=इन रोगरूप शत्रुओं को नष्ट कर।

भावार्थ—इन्द्रियों का धारक 'जितेन्द्रिय' पुरुष इस वीर्यमणि को अपना कवच बनाता है। वह उत्पन्न शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को शक्तिशाली बनाता है। इस वीर्यमणि द्वारा हम रोगों को कुचलते हैं।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

रस + वर्चस्

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद्रसेन सह वर्चसा॥ २२॥

१. **बृहस्पतिः**=सर्वज्ञ प्रभु ने **देवेभ्यः**=देववृत्ति के पुरुषों के लिए **यम्**=जिस **असुरक्षितिम्**=आसुर भावनाओं को—काम, क्रोध, लोभ को विनष्ट करनेवाली **यम्**=जिस वीर्यमणि को **अबध्नात्**=शरीर में बाँधा है। २. **सः अयं मणिः**=वह यह वीर्यमणि **मा**=मुझे **रसेन**=मानस रस (आनन्द) के साथ तथा **वर्चसा सह**=शरीरस्थ वर्चस्—रोगनिरोधक शक्ति के साथ **आगमत्**=प्राप्त हो।

भावार्थ—हम देववृत्ति के बनेंगे तो शरीर में वीर्यमणि को रक्षित कर पाएँगे। इसकी रक्षा से जहाँ हम आसुरभावों को विनष्ट कर पाएँगे, वहाँ मानस आनन्द व शरीरस्थ प्राणशक्ति को

प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

व्रीहि-यव, मधु-घृत, कीलाल

यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमत्सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह॥ २३॥
यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमत्सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह॥ २४॥
यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह॥ २५॥

१. **बृहस्पतिः**=(मन्त्र २२ में द्रष्टव्य है) २. **सः अयं मणिः**=वह यह मणि **मा**=मुझे **गोभिः सह**=उत्तम गौवों के साथ, **अजा+अविभिः**=बकरियों व भेड़ों के साथ, **अन्नेन प्रजया सह**=अन्न व उत्तम सन्तान के साथ **आगमत्**=प्राप्त हो। २. यह मणि मुझे **व्रीहियवाभ्याम्**=चावल व जौ के साथ, **महसा**=तेजस्विता व **भूत्या सह**=ऐश्वर्य के साथ प्राप्त हो। इसी प्रकार यह मणि मुझे **मधोः**=शहद की तथा **घृतस्य**=घृत की **धारया**=धारा के साथ तथा **मणिः**=यह वीर्यमणि **कीलालेन सह**=(कीलालं अन्नं—नि० २.७) सुसंस्कृत अन्न के साथ मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—वीर्यमणि के रक्षण के लिए आवश्यक है कि हमारा जीवन कृत्रिमता से दूर होकर स्वाभाविक हो। हमारे घर गौवों, बकरियों, भेड़ोंवाले व अन्न से युक्त हों। इन्हीं घरों में उत्तम सन्तान सम्भव होती है। इन घरों में चावल व जौ भोज्यपदार्थ हों, तभी तेजस्विता व ऐश्वर्य का विकास होगा। इन घरों में मधु, घृत व सुसंस्कृत अन्न की कमी न हो। (मांस आदि भोजन व अन्य उत्तेजक पेय द्रव्य वीर्यरक्षण के अनुकूल नहीं हैं)।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—२६-२७ **पथ्यापङ्क्तिः**, २८ **अनुष्टुप्**॥

ऊर्जया—भूतिभिः

यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह॥ २६॥
यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमत्तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या ∫ सह॥ २७॥
यमबंध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स माऽयं मणिरागमत्सर्वाभिर्भूतिभिः सह॥ २८॥

१. **बृहस्पतिः**=(मन्त्र २२ में द्रष्टव्य है) २. **सः अयं मणिः**=वह यह मणि **मा**=मुझे **पयसा सह ऊर्जया**=शक्तियों के आप्यायन के साथ बल व प्राणशक्ति के साथ तथा **श्रिया सह**=शोभा के साथ **द्रविणेन**=कार्यसाधक धन के साथ **आगमत्**=प्राप्त हो। **त्विष्या सह तेजसा**=कान्तियुक्त तेज के साथ तथा **कीर्त्या सह**=कीर्ति (fame) के साथ **यशसा**=सौन्दर्य (beauty, splendour) को लेकर, यह मणि मुझे प्राप्त हो तथा यह मणि **सर्वाभिः भूतिभिः सह**=सब ऐश्वर्यों के साथ मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्यमणि हमारे लिए 'शक्तियों के आप्यायन के साथ ऊर्जा को

प्राप्त कराती है, श्री के साथ द्रविण देती है। कान्ति के साथ तेज तथा कीर्ति के साथ यश देनेवाली है। यह सब ऐश्वर्यों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अभिभु-क्षत्रवर्धन' मणि

तमि॒मं दे॒वता॑ म॒णिं मह्यं॑ ददतु पुष्टये। अ॒भि॒भुं क्ष॑त्र॒वर्धं॑नं सपत्न॒दम्भ॑नं म॒णिम्॥ २९॥

१. **देवताः**=संसार के सूर्य, चन्द्र आदि देव **मह्यम्**=मेरे लिए **तम् इमम् मणिम्**=इस वीर्यमणि को **पुष्टये ददतु**=पुष्टि के लिए प्राप्त कराएँ। सब बाह्य देवों की अनुकूलता हमारे शरीरों में इस मणि का रक्षण करे। २. उस **मणिम्**=मणि को देव हमें दें जोकि **अभिभुम्**=सब रोगों का अभिभव करनेवाली है, **क्षत्रवर्धनम्**=बल को बढ़ानेवाली है तथा **सपत्नदम्भनम्**='काम, क्रोध, लोभ' रूप शत्रुओं को हिंसित करनेवाली है।

भावार्थ—सूर्य-चन्द्र आदि सब देवों की अनुकूलता हमारे शरीरों में वीर्यमणि का रक्षण करे। यह रोगों को अभिभूत करती है, बल को बढ़ाती है तथा 'काम, क्रोध, लोभ' रूप शत्रुओं को नष्ट करती है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्रह्मणा+तेजसा

ब्रह्म॑णा॒ तेज॑सा स॒ह प्रति॑ मुञ्चामि मे शि॒वम्। अ॒स॒प॒त्नः स॑पत्न॒हा स॑पत्ना॒न्मेऽध॑राँ अकः॥ ३०॥

१. **तेजसा सह ब्रह्मणा**=तेजस्विता के साथ ज्ञान के हेतु से **मे शिवम्**=मेरे लिए कल्याणकर इस वीर्यमणि को मैं **प्रतिमुञ्चामि**=धारण करता हूँ। यह मणि **असपत्नः**=सपत्नों (शत्रुओं) से रहित है। इसके धारण करने पर कोई शत्रु हमपर आक्रमण नहीं कर सकता। यह मणि **सपत्नहा**=सब शत्रुओं को नष्ट करनेवाली है। यह **मे सपत्नान्**=मेरे शत्रुओं को **अधरान् अकः**=पराजित करे—पाँव तले रौंद दे।

भावार्थ—शरीर में रक्षित वीर्यमणि हमारे शत्रुओं को नष्ट करके हमें तेजस्विता व ज्ञान प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

द्विषतः, उत्तरं, पयः, श्रैष्ठ्याय

उत्त॑रं द्विष॒तो माम॒यं म॒णिः कृ॑णोतु देव॒जाः।
यस्य॑ लो॒का इ॒मे त्रय॒: पयो॑ दु॒ग्धमुपा॑सते।
स मा॒ऽयमधि॑ रोहतु म॒णिः श्रेष्ठ्या॑य मू॒र्धतः॥ ३१॥

१. **अयं**=यह **देवजाः**=(देवाः जायन्ते यस्मात्) दिव्य गुणों की उत्पत्ति की कारणभूत **मणिः**=वीर्यमणि **माम्**=मुझे **उत्तरं कृणोतु**=शत्रुओं के ऊपर करे—शत्रुओं का विजेता बनाए। **यस्य**=जिस मणि के **दुग्धं पयः**=प्रपूरित आप्यायन को—जिस मणि के द्वारा प्राप्त कराई गई वृद्धि को **इमे त्रयो लोकाः**=ये तीनों लोक **उपासते**=उपासित करते हैं। शरीररूप पृथिवीलोक इस मणि के द्वारा ही दृढ़ किया जाता है, इसी से मनरूप अन्तरिक्षलोक शान्त बनता है, इसी से मस्तिष्करूप द्युलोक दीप्त बनता है। २. **सः अयं मणिः**=वह यह वीर्यमणि **माम् मूर्धतः अधिरोहतु**=मेरे मस्तिष्क की दिशा में—मस्तिष्क की ओर आरूढ़ हो। इसकी ऊर्ध्वगति होकर यह मेरे मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बने, इसप्रकार यह मणि मेरी **श्रैष्ठ्याय**=श्रेष्ठता के लिए हो।

भावार्थ—यह दिव्य गुणों को उत्पन्न करनेवाली वीर्यमणि मेरे शत्रुओं को परास्त करे।

इससे मेरे 'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों लोक आप्यायित हों। यह मणि मुझमें ऊर्ध्वगतिवाली होकर मुझे श्रेष्ठ बनाये।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देव, पितर, मनुष्य

यं देवाः पितरो मनुष्या ऽउपजीवन्ति सर्वदा।
स माऽयमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

१. **यम्**=जिस वीर्यमणि को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष—ब्राह्मण (ज्ञानी), **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त क्षत्रिय, **मनुष्याः**=मननपूर्वक व्यवहारों को करनेवाले वैश्य **सर्वदा उप जीवन्ति**=सदा आश्रय करके जीते हैं। यह वीर्यमणि ही तो उन्हें उत्तम 'ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य' बनाती है। **सः**=वह **अयं मणिः**=यह वीर्यमणि **मा मूर्धतः अधिरोहतु**=मेरे मस्तिष्क की ओर आरूढ़ हो—इसकी ऊर्ध्वगति होकर यह मेरे मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बने और इसप्रकार यह मेरी **श्रैष्ठ्याय**=श्रेष्ठता के लिए हो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य ही हमें उत्तम 'देव, पितर व मनुष्य' बनाता है। यह मस्तिष्क की ओर आरूढ़ होकर ज्ञानाग्नि का ईंधन बने और मुझे श्रेष्ठता प्रदान करे।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रजा, पशवः, अन्नम् अन्नम्

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **उर्वरायाम्**=उर्वरा भूमि में **फालेन कृष्टे**=हल के लोहफलक से भूमि के कृष्ट होने पर **बीजं रोहति**=बीज उगता है—फल आदि रूप में वृद्धि को प्राप्त करता है। **एव**=इसी प्रकार इस वीर्यमणि के रक्षण से **मयि**=मुझमें **प्रजा**=सन्तान **पशवः**=गौ आदि पशु व **अन्नं अन्नम्**=खाने योग्य सात्त्विक अन्न **विरोहतु**=विशेषरूप से वृद्धि को प्राप्त हों।

भावार्थ—वीर्यरक्षण से मैं उत्तम सन्तान, गौ आदि पशुओं व सात्त्विक अन्न को प्राप्त होऊँ।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञवर्धन—शतदक्षिण

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम्।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

१. हे **यज्ञवर्धन**=यज्ञों की वृत्ति को बढ़ानेवाली **मणे**=वीर्यमणे! **यस्मै**=जिस भी पुरुष के लिए **शिवं त्वा**=कल्याणकर तुझे **प्रत्यमुचम्**=मैं बाँधता हूँ, हे **शतदक्षिण**=शतवर्षपर्यन्त वृद्धि की कारणभूत **मणे**=वीर्यमणे! **त्वम्**=तू **तम्**=उस पुरुष को **श्रैष्ठ्याय**=श्रेष्ठता के लिए **जिन्वतात्**=प्रीणित कर।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्यमणि यज्ञों की वृत्ति को बढ़ाती है तथा शतवर्षपर्यन्त वृद्धि का कारण बनती है।

ऋषिः—**बृहस्पतिः** ॥ देवता—**वनस्पतिः, फालमणिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भाजगती** ॥

सुमति, स्वस्ति, प्रजा, चक्षु, पशु

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः। तस्मिन्विदेम
सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

१. हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **एतम्**=इस **इध्मम्**=दीप्त **समाहितम्**=हृदय में स्थापित प्रभु को **होमैः**=दानपूर्वक अदन से—यज्ञशेष के सेवन से **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **प्रतिहर्य**=प्राप्त करने के लिए कामनावाला हो (हर्य गतिकान्त्योः)। २. **तस्मिन्**=उस **जातेवदसि**=सर्वज्ञ प्रभु के **ब्रह्मणा**=ज्ञान के द्वारा **समिद्धे**=हृदयदेश में दीप्त होने पर हम **सुमतिम्**=कल्याणी मति को, **स्वस्ति**=कल्याण को, **प्रजाम्**=उत्तम सन्तान को, **चक्षुः**=चक्षु आदि इन्द्रियों को तथा **पशून्**=गौ आदि पशुओं को **विदेम**=प्राप्त करें।

भावार्थ—हम त्यागपूर्वक अदन करते हुए प्रभु का उपासन करें। प्रभु को ज्ञान के प्रकाश में, हृदय में समाहित करें। तब हम 'सुमति, स्वस्ति, प्रजा, चक्षु व पशुओं' को प्राप्त करेंगे।

७. [सप्तम् सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

'तप, ऋत, व्रत, श्रद्धा, सत्य' की स्थिति कहाँ?

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे ऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धाऽस्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम्॥ १॥

१. इस सप्तम सूक्त में प्रभु को 'स्कम्भ'=सर्वाधाररूप से स्मरण किया गया है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति ही प्रभु का इस रूप में अनुभव करता है। वह स्थितिप्रज्ञ 'अथर्वा (न डाँवाडोल होनेवाला) ही इस सूक्त का ऋषि है। यह अथर्वा 'ब्रह्म-जिज्ञासा' को इसप्रकार उठाता है कि **अस्य**=इस स्कम्भ के **कस्मिन् अङ्गे**=कौन-से अङ्ग (अवयव) में **तपः अधितिष्ठति**=तप की स्थिति है? **अस्य कस्मिन् अङ्गे**=इसके कौन-से अंग में **ऋतम् अध्याहितम्**=ऋत स्थापित हुआ है? **अस्य क्व**=इसके कौन से अवयव में **व्रतम्**=व्रत और **क्व**=कहाँ **श्रद्धा तिष्ठति**=श्रद्धा स्थित है। **अस्य**=इसके **कस्मिन् अङ्गे**=किस अङ्ग में **सत्यं प्रतिष्ठतम्**=सत्य प्रतिष्ठित है।

भावार्थ—ब्रह्मजिज्ञासु प्रभु को 'सर्वाधार स्कम्भ' के रूप में सोचता हुआ जिज्ञासा करता है कि इस स्कम्भ में किस-किस अङ्ग में 'तप, ऋत, व्रत, श्रद्धा व सत्य' की स्थिति है?

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

कौन-से अङ्ग से 'अग्नि, वायु व चन्द्र' का निर्माण?

कस्मादङ्गादीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात्पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद्वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा महः स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम्॥ २॥

१. **अस्य**=इस स्कम्भ—सर्वाधार—प्रभु के **कस्मात् अङ्गात्**=किस अङ्ग से **अग्निः दीप्यते**=अग्नि दीप्त होती है? **मातरिश्वा**=वायु **कस्मात् अङ्गात् पवते**=किस अङ्ग से बहनेवाला होता है? **चन्द्रमाः**=यह आह्लादजनक ज्योतिवाला चन्द्र **महः स्कम्भस्य**=उस पूजनीय (महान्) सर्वाधार प्रभु के **अङ्गम् मिमानः**=स्वरूप को प्रकट करता हुआ—प्रभु की महिमा का प्रकाश करता हुआ—**कस्मात् अङ्गात्**=किस अङ्ग से **वि**=विविध प्रकार से **अधिमिमीते**=अपना मार्ग मापता रहता है? यह कभी सोलह कलाओंवाला व कभी निष्कल दीखता है। यह व्यवस्था भी कितनी कौतूहलकारी है।

भावार्थ—ब्रह्मजिज्ञासु जिज्ञासा करता है कि उस स्कम्भ में किन-किन अङ्गों से इन 'अग्नि, वायु व चन्द्रमा' आदि देवों का प्रकाश होता है?

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक व द्युलोकोत्तर प्रदेश' की स्थिति कहाँ?

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः॥ ३॥

१. **अस्य**=इस स्कम्भ के **कस्मिन् अङ्गे**=किस अङ्ग में **भूमिः तिष्ठति**=भूमि स्थित है? और **कस्मिन् अङ्गे**=किस अङ्ग में **अन्तरिक्षं तिष्ठति**=अन्तरिक्ष स्थित है? **कस्मिन् अङ्गे**=किस अङ्ग में **आहिता**=स्थापित हुआ-हुआ यह **द्यौः तिष्ठति**=द्युलोक स्थित है? और **कस्मिन् अङ्गे**=किस अङ्ग में **दिवः उत्तरम्**=द्युलोक से भी ऊपर का प्रदेश **तिष्ठति**=स्थित है।

भावार्थ—ब्रह्मजिज्ञासु जिज्ञासा करता है कि उस सर्वाधार प्रभु के किन अङ्गों में ये 'भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक व द्युलोकोत्तर प्रदेश' स्थित हैं?

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सूर्य, वायु व जल' कहाँ चले जा रहे हैं?

क्व प्रेप्सन्दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन्पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ ४॥

१. यह **ऊर्ध्वः अग्निः**=ऊपर द्युलोक में वर्त्तमान अग्नि, अर्थात् सूर्य **क्व प्रेप्सन्**=कहाँ पहुँचने की कामना करता हुआ **दीप्यते**=चमक रहा है? और **क्व प्रेप्सन्**=कहाँ पहुँचने की कामना करता हुआ यह **मातरिश्वा**=वायु **पवते**=बह रहा है? २. **यत्र**=जहाँ **प्रेप्सन्तीः**=पहुँचने की कामना करती हुई **आवृतः**=चारों ओर वर्त्तनवाली ये जलधाराएँ **अभियन्ति**=चारों ओर (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में) गतिवाली होती हैं, **तम्**=उसे **स्कम्भम्**=स्कम्भ—सर्वाधार **ब्रूहि**=कहो। **सः**=वह **स्वित्**=निश्चय से **क-तमः एव**=अतिशयेन आनन्दमय ही है।

भावार्थ—ये 'सूर्य, वायु व जल' न जाने कहाँ पहुँचने की कामना करते हुए निरन्तर गतिमय हैं? वस्तुतः जिसके आधार में ये सब गतिवाले हो रहे हैं, वे सर्वाधार प्रभु ही हैं—वे 'स्कम्भ' हैं। निश्चय से वे परमानन्दमय हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अर्धमास, मास, संवत्सर, ऋतुएँ व आर्तव पुष्प' आदि कहाँ?

क्वा ऽर्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ ५॥

१. ये **अर्धमासाः**=मास के आधे भाग, अर्थात् पक्ष **क्व यन्ति**=किसमें गतिवाले हो रहे हैं? **संवत्सरेण सह संविदानाः**=वर्ष के साथ संज्ञान-(मेल)-वाले होते हुए **मासाः**=ये मास (महिने) **क्व यन्ति**=किस आधार में गतिवाले हो रहे हैं? २. **यत्र**=जिस आधार में **ऋतवः**=वसन्तादि ऋतुएँ **यन्ति**=गतिवाली हैं, और **यत्र**=जिस आधार में **आर्तवाः**=सब ऋतु-सम्बन्धी पुष्प, फल, मूल गतिवाले हैं, **तम्**=उस आधार को **स्कम्भं ब्रूहि**='स्कम्भ'—सर्वाधार कहो। **सः**=वह **स्वित्**=निश्चय से **कतमः एव**=अत्यन्त आनन्दमय ही है।

भावार्थ—'अर्धमास, मास, संवत्सर, ऋतुएँ व आर्तव पुष्प-फल आदि' ये सब जिस आधार में गतिवाले हो रहे हैं, वे सर्वाधार प्रभु ही 'स्कम्भ' नामवाले हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अहोरात्रे—आपः

क्व॑ प्रेप्स॑न्ती युव॒ती विरू॑पे अहोरा॒त्रे द्र॑वतः संविदा॒ने।
यत्र॒ प्रेप्स॑न्तीर॒भि॒यन्त्याप॑ः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥ ६॥

१. **क्व प्रेप्सन्ती**=कहाँ-पहुँचने की अभिलाषा करती हुई ये दो **विरूपे**=विपरीत रूपवाली—प्रकाश व अन्धकारमयी (एक श्वेता और दूसरी कृष्णा) **संविदाने**=परस्पर मन्त्रणा-सी करती हुई **अहोरात्रे युवती**=दिन व रात्रिरूप युवतियाँ **द्रवतः**=चली जा रही हैं? **यत्र**=जिसके आधार में **प्रेप्सन्तीः**=विविध वस्तुओं को प्राप्त करने की कामना करती हुई **आपः**=प्रजाएँ (आपो वै नरसूनवः) **अभियन्ति**=चारों ओर गति कर रही हैं, **तम्**=उस आधार को **स्कम्भम्**=स्कम्भ—सर्वाधार प्रभु **ब्रूहि**=कहो। **सः एव**=वही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अत्यन्त आनन्दमय है।

भावार्थ—प्रभु के आधार में ही ये दिन व रात निरन्तर चले जा रहे हैं। उसी के आधार में सब प्रजाएँ, विविध पदार्थों को प्राप्त करने की कामना से गतिवाली हो रही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

द्यावापृथिवी (प्रजापतिः)

यस्मि॑न्त्स्त॒ब्ध्वा प्र॒जाप॑तिर्लो॒कान्त्सर्वाँ॒ अधा॑रयत्।
स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥ ७॥

१. **यस्मिन् स्तब्ध्वा**=जिसमें आधार पाकर (अपने को थामकर) **प्रजापतिः**=('द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः, मातेव च हि पितेव च प्रजापतिः'—श० ५.१.५.२६) ये पिता व माता के समान द्युलोक व पृथिवीलोक **सर्वान् लोकान् अधारयत्**=सब लोकों का धारण कर रहे हैं। सब लोक इस द्यावापृथिवी में ही तो आश्रित हैं और ये द्यावापृथिवी उस स्कम्भ (प्रभु) में आहित है। **तम्**=उस **स्कम्भम्**=आधारभूत प्रभु का ही **ब्रूहि**=प्रतिपादन करो। **सः एव**=वही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—ये द्यावापृथिवी, प्रभु में आधारित हुए-हुए, सब लोकों का धारण कर रहे हैं। वे प्रभु स्कम्भ, सर्वाधार हैं, और कतमः=अतिशयेन आनन्दमय हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**भूरिक्त्रिष्टुप्**॥

परम, अवम, व मध्यम' सृष्टि उस असीम प्रभु में

यत्प॑र॒मम॑व॒मं यच्च॑ मध्य॒मं प्र॒जाप॑तिः ससृ॒जे वि॒श्वरू॑पम्।
कि॒यता स्क॒म्भः प्र वि॑वेश॒ तत्र॒ यन्न प्रावि॑श॒त्कि॒य॒त्त॒द्ब॒भूव॥ ८॥

१. **यत्**=जो **परमम्**=उत्कृष्ट सात्त्विक, **अवमम्**=निकृष्ट तामस्, **यत् च मध्यमम्**=और जो मध्यम राजस् **विश्वरूपम्**=सब भिन्न-भिन्न रूपोंवाला वस्तुजगत् **प्रजापतिः ससृजे**=प्रजापालक प्रभु ने उत्पन्न किया है। **'ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत्त एवैति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि'। तत्र**=उस सारे वस्तु-जगद्रूप ब्रह्माण्ड में **स्कम्भः**=वे सर्वाधार प्रभु **कियता प्रविवेश**=कितने अंश में प्रविष्ट हुए हैं? प्रभु का **यत्**=जो अंश **न प्राविशत्**=यहाँ नहीं प्रविष्ट हुआ, **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'** इस पुरुषसूक्त के वाक्य के द्वारा स्पष्ट है कि प्रभु के एकदेश में ही सारा ब्रह्माण्ड स्थित है, प्रभु के तीन अंश तो इससे ऊपर ही हैं।

भावार्थ—प्रभु ने 'सात्त्विक, राजस् व तामस्' त्रिविध वस्तुजगत्वाले इस ब्रह्माण्ड को रचा

है। यह सारा ब्रह्माण्ड उसके एक देश में ही है—उसका त्रिपाद् तो अपने प्रकाशमय स्वरूप में ही स्थित है। एवं, स्थान के दृष्टिकोण से वे प्रभु असीम हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' प्रभु

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद्भविष्यदन्वाशयेऽस्य।
एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र॥ ९॥

१. **कियता**=अपने कितने अंश में **स्कम्भः**=वह सर्वाधार प्रभु **भूतं प्रविवेश**=भूतकाल में प्रविष्ट हुआ? **अस्य कियत्**=इस स्कम्भ का कितना अंश **भविष्यत् अन्वाशये**=आनेवाले भविष्यकाल में प्रविष्ट होता है? इस स्कम्भ ने **यत्**=जब **एकं अङ्गम्**=अपने एक अङ्ग को (अङ्गभूत अव्यक्त को) **सहस्रधा अकृणोत्**=हज़ारों प्रकारों में वर्त्तमानकाल में प्रकट किया है, **तत्र**=वहाँ—उस वर्त्तमान में वह **स्कम्भः**=सर्वाधार प्रभु **कियता प्रविवेश**=कितने अंश में प्रविष्ट हुआ है? थोड़े ही अंश में प्रकट हुआ है।

भावार्थ—वे सर्वाधार प्रभु भूत, भविष्यत् व वर्त्तमान काल से अवच्छिन्न नहीं हैं। वे प्रभु तो दिक्कालाद्यनवच्छिन्न ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

'लोक, कोश, ब्रह्म, सत् व असत्' का आधार 'स्कम्भ'

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः।
असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ १०॥

१. **यत्र**=जिसके आधार में **लोकान् च**=सब लोकों **च कोशान्**=और सब कोशों तथा **ब्रह्म**=ज्ञान को **आपः जनाः**=आप्त जन—ज्ञानी पुरुष **विदुः**=जानते हैं। **यत्र अन्तः**=जिसके अन्दर **सत् च असत् च**=वह कार्यजगत् व कारणजगत् निहित है, **तम्**=उस ब्रह्म को ही **स्कम्भं ब्रूहि**=स्कम्भ (सर्वाधार) नाम से कहो। **सः एव**=वह ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—आप्तजन उस प्रभु को ही सब लोकों, सब कोशों, आवरणों व ज्ञानों का आधार जानते हैं। उसी में ये कार्यजगत् व कारणजगत् आधारित हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

सबका धारक 'ब्रह्माश्रित तप'

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्। ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवः सः॥ ११॥

१. **यत्र**=जिसके आश्रय पर **पराक्रम्य**=पराक्रम करके **तपः**=तप **उत्तरं व्रतं धारयति**=उत्कृष्ट आचरण को धारण करता है, अर्थात् आचरण को उत्कृष्ट बनानेवाले तप का आधार वे प्रभु ही तो हैं **च**=और **यत्र**=जिसमें **ऋतं श्रद्धा च**=ऋत और श्रद्धा **आपः ब्रह्म**=सब जीवगण व ज्ञान **समाहिताः**=एक ही साथ (सम्) स्थापित हैं (आहिताः) **तम्**=उस देव को **स्कम्भं ब्रूहि**=सर्वाधार 'स्कम्भ' कहो। **सः एव**=वह ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—सब व्रतों के धारक तप, ऋत, श्रद्धा, सब जीवगण व ज्ञान का धारक वह आनन्दमय 'स्कम्भ' नामक प्रभु ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

'भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा अग्नि, चन्द्र, सूर्य व वायु' का आधार 'ब्रह्म'

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ १२॥

१. **यस्मिन्**=जिसमें **भूमिः अन्तरिक्षम्**=भूमि और अन्तरिक्ष तथा **यस्मिन्**=जिसमें **द्यौः**=द्युलोक **अध्याहिता**=स्थापित है। **यत्र**=जिसमें **अग्निः चन्द्रमाः सूर्यः वातः**=अग्नि, चन्द्र, सूर्य और वायु **आर्पिताः तिष्ठन्ति**=समन्तात् अर्पित हुए-हुए स्थित हैं, **तम्**=उसी को **स्कम्भम्**=सर्वाधार **ब्रूहि**=कहो। **सः एव**=वह ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—'भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा अग्नि, चन्द्र, सूर्य व वायु' को अपने में स्थापित करनेवाला वह प्रभु ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

तेतीस देवों का आधार 'ब्रह्म'

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ १३॥

१. **यस्य अङ्गे**=जिसके एक अङ्ग (एक देश) में **सर्वे त्रयस्त्रिंशद् देवाः**=सब तेतीस देव **समाहिताः**=परस्पर संगतरूप में स्थापित हैं, **तम्**=उस प्रभु को ही **स्कम्भं ब्रूहि**=सर्वाधार 'स्कम्भ' कहो। **सः एव**=वही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—'आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य व इन्द्र और प्रजापति' इन तेतीस देवों के आधार वे आनन्दमय प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

प्रथमजाः ऋषयः, ऋचः, साम, यजुर्मही, एकर्षिः

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ १४॥

१. **यत्र**=जिसके आधार में **प्रथमजाः ऋषयः**=सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' नामक ऋषि तथा इन ऋषियों को प्राप्त कराई गई **ऋचः सामयजुः मही**=ऋग्वेद की वाणियाँ, यजुरूप वाणियाँ, साम-मन्त्र तथा महनीय अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) ये सब स्थित हैं तथा **एक ऋषिः**=(ऋषिः इन्द्रियम्—नि० १२,३६) अद्वितीय मुख्य इन्द्रिय 'मन' **यस्मिन् आर्पितः**=जिसमें अर्पित हुआ है, **तम्**=उस **स्कम्भम्**=सर्वाधार प्रभु का **ब्रूहि**=प्रतिपादन कर। **सः एव**=वही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—सृष्टि के प्रारम्भ में होनेवाले 'अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा' आदि ऋषि, इनके द्वारा दी जानेवाली 'ऋग्, यजु, साम व अथर्व' वाणियाँ तथा अनुपम इन्द्रिय 'मन' जिसमें अर्पित है, वही सर्वाधार आनन्दमय प्रभु है—'स्कम्भ' है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

अमृत, मृत्यु, समुद्र

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ १५॥

१. **यत्र पुरुषे**=जिस परम पुरुष में **अमृतं च मृत्युः च**=अमृत (नीरोगता) तथा मृत्यु **अधिसमाहिते**=आश्रित हैं और **समुद्रः**=यह विशाल अन्तरिक्षस्थ मेघ **यस्य**=जिसके महान् ब्रह्माण्डमय शरीर में **पुरुषे नाड्यः इव**=पुरुष के शरीर में रुधिरभरी नाड़ियों के समान **अधि समाहिताः**=स्थापित हैं, **तम्**=उसी को **स्कम्भम्**=सर्वाधार **ब्रूहि**=कहो। **सः एव**=वह स्कम्भ ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—वह 'स्कम्भ' प्रभु ही सर्वाधार है। उसी के आधार में 'अमृत, मृत्यु व समुद्र' समाहित हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद् बृहती**॥

चतस्रः प्रदिशः—यज्ञः

यस्य॒ चत॑स्रः प्र॒दिशो॑ ना॒ड्य॑१॑स्तिष्ठ॑न्ति प्रथ॒माः।
य॒ज्ञो यत्र॒ परा॑क्रान्तः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥ १६॥

१. **चतस्रः प्रदिशः**=ये चारों विशाल दिशाएँ **यस्य प्रथमाः नाड्यः**=जिसकी मुख्य नाड़ियों के समान **समाहिताः**=समाहित हुई **तिष्ठन्ति**=स्थित हैं। **यत्र**=जिसमें **यज्ञ**=श्रेष्ठतम कर्म—सृष्टिरूप यज्ञ—**पराक्रान्तः**=उत्कृष्टता से सम्पादित होता है। **तं स्कम्भं ब्रूहि**=उस सर्वाधार का तू प्रतिपादन कर। **सः एव**=वह स्कम्भ ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अत्यन्त आनन्दमय है।

भावार्थ—उस विराट् पुरुष के शरीर की चार मुख्य नाड़ियों के समान ये चार दिशाएँ हैं। उस प्रभु से ही यज्ञादि उत्तम कर्मों का सम्पादन होता है। वे स्कम्भ नामक प्रभु अतिशयेन आनन्दमय हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

परमेष्ठी, प्रजापति

ये पुरु॑षे॒ ब्रह्म॑ वि॒दुस्ते वि॑दुः पर॒मे॒ष्ठिन॑म्।
यो वेद॑ पर॒मे॒ष्ठिन॑ं॒ यश्च॒ वेद॑ प्र॒जाप॑तिम्।
ज्ये॒ष्ठं ये ब्राह्म॑णं वि॒दुस्ते स्क॒म्भम॑नुसंवि॑दुः॥ १७॥

१. **ये**=जो **पुरुषे**=इस पुरुष-शरीर में **ब्रह्म विदुः**=उस ब्रह्म को जानते हैं, **ते**=वे ही **परमेष्ठिनम्**=परम स्थान में स्थित प्रभु को **विदुः**=वस्तुतः जानते हैं। प्रभु का जब भी दर्शन होगा, हृदय में ही तो होगा। सारे विश्व में उसकी महिमा का प्रकाश होता है, हृदय में प्रभु का दर्शन। **यः**=जो **परमेष्ठिनं वेद**=उस परम स्थान में स्थित प्रभु को **वेद**=जानता है, **च**=और **यः**=जो उसे **प्रजापतिं वेद**=सब प्रजाओं का रक्षक जानता है **ये**=जो उस **ज्येष्ठम्**=सर्वश्रेष्ठ—सर्वमहान् **ब्राह्मणम्**=ज्ञानपुञ्ज प्रभु को **विदुः**=जानते हैं, **ते**=वे **स्कम्भम्**=उस सर्वाधार को **अनुसंविदुः**=अनुकूलता से जाननेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु हमारे हृदयों में स्थित हैं। वे 'परमेष्ठी, प्रजापति, ज्येष्ठ, ज्ञानपुञ्ज व सर्वाधार' हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

शिरः वैश्वानरः, चक्षुः अङ्गिरसः

यस्य॒ शिरो॑ वैश्वान॒रश्चक्षु॑र॒ङ्गिर॑सोऽभवन्।
अङ्गा॑नि॒ यस्य॑ या॒तवः॑ स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥ १८॥
यस्य॒ ब्रह्म॒ मुख॑मा॒हुर्जि॒ह्वां म॑धुक॒शामु॒त।
वि॒राज॒मूधो॒ यस्या॒हुः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥ १९॥

१. **यस्य**=जिसका **शिरः**=सिर **वैश्वानरः**=वैश्वानर अग्नि है, **चक्षुः**=आँख ही **अङ्गिरसः**=प्राण ('प्राणो वै अङ्गिराः' श० ६।१।२।२८) **अभवन्**=हो गये हैं। **यस्य अङ्गानि**=जिसके अङ्ग **यातवः**=गतिशील प्राणी हैं। **यस्य**=जिसका **मुखम्**=मुख ही **ब्रह्म**=वेदज्ञान हैं, **उत**=और **जिह्वाम्**=जिह्वा को **मधुकशाम्**=मधुरता से प्रेरणा देनेवाली वेदवाणी **आहुः**=कहते हैं। **यस्य**=जिसके **ऊधः**=ऊधस् (the bosom) वक्षस्थल को **विराजम्**=विशिष्ट दीप्तिवाला **आहुः**=कहते हैं। २. **तम्**=उस **स्कम्भम्**=सर्वाधार प्रभु को **ब्रूहि**=कह—उसी का स्तवन कर। **सः**=वह **एव**=ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अत्यन्त आनन्दमय है।

भावार्थ—यह सारा ब्रह्माण्ड उस प्रभु के भिन्न-भिन्न अङ्गों के समान है। वे सर्वाधार प्रभु अतिशयेन आनन्दमय हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

ऋग्, यजु, साम, अथर्व

यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाऽङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ २०॥

१. **यस्मात्**=जिससे **ऋचः**=ऋचाएँ—विज्ञान-प्रतिपादक मन्त्र—**अपातक्षन्**=बनाये गये, **यस्मात्**= जिससे **यजुः**=यजुर्मन्त्र—कर्मप्रतिपादक मन्त्र **अपाकषन्**=निर्मित हुए। **सामानि**=साम-मन्त्र—उपासना प्रतिपादक मन्त्र **यस्य**=जिसके **लोमानि**=लोम तुल्य हैं, तथा **अथर्व-अङ्गिरसः**= अङ्गिरा ऋषि के हृदय में प्रेरित किये गये अथर्ववेद के मन्त्र **मुखम्**=जिसका मुख है। **तम्**=उस **स्कम्भम्**=सर्वाधार प्रभु को **ब्रूहि**=कह, उसी का स्तवन कर। **सः एव**=वही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय है।

भावार्थ—प्रभु ने 'ऋग्, यजुः, साम' मन्त्रों द्वारा ज्ञान, कर्म, उपासना का प्रतिपादन किया तथा अथर्व-मन्त्रों द्वारा 'कम खाने व कम बोलने' का उपदेश देते हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग को रसमय बनने का संकेत किया।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्**॥

'असत् शाखा' का उपासन

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते॥ २१॥

१. अदृश्य होने से प्रकृति 'अ-सत्' कहलाती है तथा यह दृश्य जगत् 'सत्' कहा गया है। संसार-वृक्ष की शाखाएँ ऊपर-नीचे फैली हैं '**अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखाः**'। इस वृक्ष का मूल वह 'असत्' प्रकृति है। यह अनन्त शाखाओंवाला संसार बड़े दृढ़ मूलवाला है। यह हमारे हृदयों में प्रतिष्ठित-सा हो जाता है। **प्रतिष्ठन्तीम्**=हृदयों में प्रकर्षेण अपना स्थान बनाती हुई इन **असत् शाखाम्**=प्रकृतिमूलक वृक्ष-शाखाओं को ही **जनाः**=सामान्य लोग **परमं इव विदुः**=सर्वोत्तम-सा जानते हैं। २. **उतो**=और **ये**=जो **शाखाम्**=इस संसारवृक्ष-शाखा की **उपासते**= उपासना करते हैं **ते अवरे**=वे निम्न श्रेणी के लोग इसे ही **सत् मन्यन्ते**=श्रेष्ठ समझते हैं। इसी में उलझे हुए वे जन्म-मरण के चक्र से ऊपर नहीं उठ पाते।

भावार्थ—सामान्य लोग प्रकृति से उत्पन्न इस संसार-वृक्ष को ही 'परम' समझते हैं, इसे ही वे सत्(श्रेष्ठ) मानते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

आदित्य, रुद्र, वसु

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ २२॥

१. **यत्र**=जिसमें **आदित्याः च**=बारह आदित्य देव, **रुद्राः च**=ग्यारह रुद्रदेव **च**=तथा **वसवः**=आठ वसु **समाहिताः**=सम्यक् स्थापित हैं। सब देवों के आधारभूत वे प्रभु ही तो स्कम्भ हैं। **यत्र**=जहाँ **भूतं च भव्यं च**=जो लोक भूतकाल में थे तथा भविष्यत् में होंगे तथा वर्त्तमानकाल में **सर्वे लोकाः**=सब लोक **प्रतिष्ठिताः**=प्रतिष्ठित हैं, **तम्**=उस **स्कम्भम्**=सर्वाधार प्रभु को **ब्रूहि**=कह—स्तवन कर। **सः एव**=वे प्रभु ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय हैं।

भावार्थ—आदित्यों, रुद्रों व वसुओं के आधार वे प्रभु ही हैं। कालत्रयी में होनेवाले सब लोक उस प्रभु में ही प्रतिष्ठित हैं। उस सर्वाधार 'स्कम्भ' का ही हम स्तवन करें, वे ही आनन्दस्वरूप हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले' वे प्रभु

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ॥ २३॥

१. **त्रयस्त्रिंशद् देवाः**=तेतीस देव (बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, इन्द्र व प्रजापति) **यस्य निधिम्**=जिसके द्वारा दी गई निधि (कोश) को **सर्वदा रक्षन्ति**=सदा अपने में रखते हैं **'तेन देवा देवतामग्र आयन्'**=उस प्रभु से ही तो ये सब देव देवत्व को प्राप्त करते हैं। **'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'**=उसी की दीप्ति से तो ये सब दीप्त हो रहे हैं। २. हे **देवाः**=देवो! **यं निधिम्**=जिस निधि को तुम **अभिरक्षथ**=अपने अन्दर रक्षित करते हो, **अद्य**=आज **तम्**=उस (निधिम्) उस निधि को **कः वेद**=कौन पूरा-पूरा जानता है। प्रभु ने एक-एक देव में देवत्व स्थापित किया है। उस देवत्व को ही पूर्णतया जानना कठिन है। संस्थापक के जानने की बात तो दूर रही। इस पृथिवी को भी कौन पूर्णतया जानता है?

भावार्थ—प्रभु ने सब देवों में जिस देवत्व को स्थापित किया है, उसे भी पूर्णतया जानना संभव नहीं। प्रभु तो अज्ञेय हैं ही।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मविद् देवों के सम्पर्क में

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥ २४॥

१. **यत्र**=जहाँ **देवाः**=देववृत्ति के **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष **ब्रह्म**=उस प्रभु को ही **ज्येष्ठम्**=सर्वश्रेष्ठरूप में **उपासते**=उपासित करते हैं—प्रभु को ही ज्येष्ठ मानकर पूजित करते हैं, वहाँ **यः**=जो भी **वै**=निश्चय से **तान्**=उन ब्रह्मज्ञानियों को **प्रत्यक्षं विद्यात्**=प्रत्यक्ष जानता है—उनके सम्पर्क में आकर उनसे ज्ञान का श्रवण करता है, **सः**=वह भी **ब्रह्मा**=सर्वोत्तम सात्त्विक व्यक्ति बनता है और **वेदिता स्यात्**=ज्ञानी होता है।

भावार्थ—ब्रह्मविद् देव तो ब्रह्म को 'ज्येष्ठ' रूप में उपासित करते ही हैं, उनके सम्पर्क

में आकर उनसे दिये गये ज्ञान का श्रोता भी सात्त्विक व ज्ञानी बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देव—असत्—स्कम्भ (पर—परतर—परतम)

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः॥ २५॥

१. **ये**=जो **असतः**=अव्यक्त प्रकृति से **परिजज्ञिरे**=प्रादुर्भूत हुए हैं, **ते देवाः**=ये सूर्य, वायु, अग्नि आदि देव भी **बृहन्तः नाम**=निश्चय से बृहत् हैं। इन सूर्य आदि देवों की महिमा भी महान् है। इन देवों का कारणभूत वह **असत्**=अव्याकृत (अदृश्य-सा) प्रधान (प्रकृति) **परः**=इन सब देवों से उत्कृष्ट है। कारणात्मना वह प्रधान इन कार्यभूत सूर्यादि देवों से उत्कृष्ट होना ही चाहिए। **जनाः**=ज्ञानी लोग **तत्**=उस असत् को भी **स्कम्भस्य**=सर्वाधार प्रभु का **एकं अङ्गं आहुः**=एक अङ्ग ही कहते हैं। वह अङ्गी स्कम्भ तो इस अङ्गभूत असत् से कितना ही महान् है, **'त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः'**।

भावार्थ—सूर्य,वायु, अग्नि देव महान् हैं। इनका कारणभूत 'असत्' (प्रधान=प्रकृति) इनसे पर है। वह असत् भी सर्वाधार प्रभु का एक अङ्ग ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्कम्भ का एक अङ्ग 'पुराण'

यत्र स्कम्भः प्रजनयन्पुराणं व्यवर्तयत्।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः॥ २६॥

१. **यत्र**=जहाँ **स्कम्भः**=वे सर्वाधार प्रभु **प्रजनयन्**=इस सृष्टि की उत्पत्ति के हेतु से **पुराणम्**=प्रवाहरूप से सनातन प्रधान (प्रकृति) को **व्यवर्तयत्**=निवृत्त करते हैं—विविध रूपों में परिवर्तित करते हैं। वहाँ ज्ञानी पुरुष **तत् पुराणम्**=उस सनातन प्रधान को **स्कम्भस्य**=उस सर्वाधार प्रभु का ही **एकं अङ्गम्**=एक अङ्ग **अनुसंविदुः**=अनुसन्धान करते हुए सम्यक् जानते हैं। इस प्रधान (Matter) का भी अन्तिम स्वरूप सामर्थ्य=शक्ति (energy) ही है और यह सामर्थ्य प्रभु का ही तो अङ्ग है—गुण है।

भावार्थ—'प्रकृति' कभी विकृति के रूप में और कभी फिर प्रकृति के रूप में चली आती हुई 'पुराण' (सन्तान) है। प्रभु इसी का विवर्तन करते हुए सृष्टि को जन्म देते हैं। यह पुराण—प्रकृति भी अन्ततः सामर्थ्य के रूप में होती हुई उस प्रभु का ही एक अङ्ग है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

महादेव के अङ्गभूत तेतीस देव

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥ २७॥

१. **यस्य अङ्गे**=जिस विराट् पुरुष के शरीर में **त्रयस्त्रिंशद् देवाः**=तेतीस देव **गात्रा विभेजिरे**=भिन्न-भिन्न अङ्गों का सेवन करते हैं। विराट् पुरुष के भिन्न-भिन्न अङ्ग ही ये देव हैं। **तान् त्रयस्त्रिंशद् देवान्**=उसे विराट् पुरुष के भिन्न-भिन्न अङ्गभूत तेतीस देवों को **एके ब्रह्मविदः**=केवल ब्रह्मज्ञानी लोग ही **वै**=निश्चय से **विदुः**=जानते हैं।

भावार्थ—तेतीस देवों के आधारभूत वे चौंतीसवें महादेव हैं। सर्वाधार होने से वे 'स्कम्भ' हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिरण्यगर्भ

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः। स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा॥ २८॥

१. **जनाः**=ज्ञानी लोग **हिरण्यगर्भम्**=(हिरण्यं वै ज्योतिः) सम्पूर्ण ज्योति जिसके गर्भ में है, उस प्रभु को **परमम्**=सर्वोत्कृष्ट व **अनति-उद्यम्**='जिसका स्तवन अत्युक्त हो ही नहीं सकता' ऐसा **विदुः**=जानते हैं। वे प्रभु 'वाचाम् अगोचर' हैं—वाणी का विषय बन ही नहीं सकते। २. वे **स्कम्भः**=सर्वाधार प्रभु **अग्रे**=सृष्टि के प्रारम्भ में **तत् हिरण्यम्**=उस ज्योति को **लोके अन्तरा**=इस लोक के अन्दर **प्रासिञ्चत्**=सींचते हैं। 'सूर्य, विद्युत् व अग्नि' आदि ज्योतियों को वे प्रभु ही तो बनाते हैं। '**त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी**'।

भावार्थ—प्रभु हिरण्यगर्भ हैं—परम हैं—अनत्युद्य हैं। वे सर्वाधार प्रभु ही इस लोक में सूर्य आदि ज्योतियों का स्थापन करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'लोकों, तप व ऋत' के आधार प्रभु

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम्॥ २९॥

१. **स्कम्भे**=उस सर्वाधार प्रभु में ही **लोकाः**=ये सब लोक आहित हैं। **स्कम्भे**=उस सर्वाधार में ही **तपः**=तप आहित है—'ऋत व सत्य' के जनक तप के आधार प्रभु ही हैं '**ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत**'। **स्कम्भे**=उस सर्वाधार प्रभु में ही **ऋतम् अधि आहितम्**=ऋत स्थापित है। २. हे **स्कम्भ**=सर्वाधार प्रभो! मैं **त्वा**=आपको **प्रत्यक्षं वेद**=एक-एक पदार्थ में स्पष्ट जानता हूँ। सब पदार्थों में आपकी ही महिमा दीखती है। **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में ही सर्वं **समाहितम्**=सब समाहित है।

भावार्थ—वे प्रभु ही 'लोकों, तप व ऋत' के आधार हैं। इन्द्र में सब लोक समाहित हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

इन्द्रः स्कम्भ

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम्।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ३०॥

१. **इन्द्रे लोकाः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में सब लोक आहित हैं। **इन्द्रे तपः**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में ही तप की स्थिति है। **इन्द्रे ऋतम् अधि आहितम्**=उस इन्द्र में ही ऋत स्थापित हुआ है। **इन्द्रं त्वा**=परमैश्वर्यशाली आपको मैं **प्रत्यक्षं वेद**=प्रत्येक पिण्ड में प्रत्यक्ष देखता हूँ—सब पदार्थों में आपकी महिमा दृष्टिगोचर होती है। **स्कम्भम्**=सर्वाधार आपमें ही **सर्वं प्रतिष्ठितम्**=यह सारा ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित है।

भावार्थ—प्रभु ही इन्द्र हैं—परमैश्वर्यशाली हैं। 'लोकों, तप व ऋत' के आधारभूत इन्द्र सचमुच 'स्कम्भ' हैं—सर्वाधार हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**मध्येज्योतिर्जगती**॥

नामस्मरण व स्वराज्य प्राप्ति

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव
स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्॥ ३१॥

१. **सूर्यात् पुरा**=सूर्योदय से पूर्व ही, सूर्योदय से क्या? **उषसः पुरा**=उषाकाल से भी पहले **नाम्ना**='इन्द्र, स्कम्भ' आदि नामों से एक साधक **नाम जोहवीति**=उस शत्रुओं को नमानेवाले प्रभु को पुकारता है। इस 'नाम-जप' से प्रेरणा प्राप्त करके **यत्**=जब **अजः**=सब बुराइयों को क्रियाशीलता द्वारा परे फेंकनेवाला जीव (अज गतिक्षेपणयोः) **प्रथमम्**=उस सर्वाग्रणी व सर्वव्यापक (प्रथ विस्तारे) प्रभु के **संबभूव**=साथ होता है, अर्थात् प्रभु से अपना मेल बनाता है, तब **सः**=वह अज **ह**=निश्चय से **स्वराज्यम् इयाय**=स्वराज्य प्राप्त करता है—अपना शासन करनेवाला बनता है, इन्द्रियों का दास नहीं होता। वह उस स्वराज्य को प्राप्त करता है **यस्मात्**=जिससे **परम्**=बड़ा **अन्यत्**=दूसरा **भूतम्**=पदार्थ **न अस्ति**=नहीं हैं।

भावार्थ—जब एक साधक ब्राह्ममुहूर्त में प्रभु का स्मरण करता है तब वह बुराइयों को दूर करके प्रभु के साथ मेलवाला होता है। यह प्रभु-सम्पर्क इसे इन्द्रियों का स्वामी (न कि दास) बनाता है। यह आत्मशासन—स्वराज्य—सर्वोत्तम वस्तु है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**३२, ३४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३३ पराविराडनुष्टुप्**॥

प्रभु का विराट् देह

यस्य॒ भूमिः॒ प्र॒मान्तरि॑क्षमु॒तोद॑रम्।
दिव॑ं॒ यश्च॒क्रे मू॒र्धान॑ं॒ तस्मै॒ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑॥ ३२॥
यस्य॒ सूर्य॑श्चक्षु॒श्च॒न्द्रमा॑श्च॒ पुन॑र्णवः।
अ॒ग्निं यश्च॒क्र आ॒स्य॑ं॒ तस्मै॒ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑॥ ३३॥
यस्य॒ वातः॑ प्रा॒णापा॒नौ चक्षु॑र॒ङ्गि॑र॒सोऽभ॑वन्।
दिशो॒ यश्च॒क्रे प्र॒ज्ञानी॒स्तस्मै॒ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑॥ ३४॥

१. **यस्य**=जिसका **भूमिः**=यह पृथिवी **प्रमा**=पादमूल के समान है—पाँव का प्रमाण है, **उत**=और **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष **उदरम्**=उदर है, **यः दिवं मूर्धानं चक्रे**=जिसने द्युलोक को अपना मूर्धा (मस्तक) बनाया है। **यस्य**=जिसके **सूर्यः**=सूर्य **च**=और **पुनर्णवः चन्द्रमाः**=फिर-फिर नया होनेवाला यह चन्द्र **चक्षुः**=आँख है। **यः अग्निं आस्यं चक्रे**=जिसने अग्नि को अपना मुख बनाया है। **यस्य वातः प्राणापानौ**=जिसके वायु ही प्राणापान हैं। **अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्**=(अङ्गिरसं मन्यन्ते अङ्गानां यद्रसः—छां० १.२.१०) अङ्गरस ही उसकी आँख हुए। **दिशः यः प्रज्ञानीः चक्रे**=दिशाओं को जिसने प्रकृष्ट ज्ञान का साधन (श्रोत्र) बनाया। २. **तस्मै**=उस **ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः**=ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए हम नतमस्तक होते हैं। प्रभु के लिए सूर्योदय से पूर्व सूर्योदय से ही क्या, उषाकाल से भी पूर्व उठकर प्रणाम करना चाहिए। यह प्रभु-नमन ही सब गुणों को धारण के योग्य बनाएगा।

भावार्थ—यह ब्रह्माण्ड उस सर्वाधार प्रभु का देह है। इस ब्रह्माण्ड को वे ही धारण कर रहे हैं। इसके अङ्गों में उस प्रभु की महिमा को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। इस महिमा को देखता हुआ साधक उस प्रभु के प्रति नतमस्तक होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**चतुष्पदाजगती**॥

सर्वाधार 'स्कम्भ'

स्क॒म्भो दा॑धार॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे इ॒मे स्क॒म्भो दा॑धारो॒र्व॑ं॒न्तरि॑क्षम्।
स्क॒म्भो दा॑धार प्र॒दिश॒ः षड्उ॒र्वीः स्क॒म्भ इ॒दं विश्व॑ं॒ भुव॑न॒मा वि॑वेश॥ ३५॥

१. **स्कम्भः**=उस सर्वाधार प्रभु ने ही **इमे उभे द्यावापृथिवी**=इन दोनों द्युलोक व पृथिवीलोक को **दाधार**=धारण किया हुआ है। **स्कम्भः**=स्कम्भ ने ही **उरु अन्तरिक्षं दाधार**=विशाल अन्तरिक्ष को धारण किया है। **स्कम्भः**=स्कम्भ ने ही **षट् उर्वीः प्रदिशः**=छह बड़ी दिशाओं को **दाधार**=धारण किया है। **स्कम्भे**=उस सर्वाधार प्रभु के एकदेश में ही **इदं विश्वं भुवनम्**=यह सारा भुवन **आविवेश**=प्रविष्ट हुआ है। प्रभु इन सबमें व्याप्त हो रहे हैं—प्रभु की व्याप्ति से ही यह उस-उस दीप्ति को धारण करता है।

भावार्थ—प्रभु ही द्यावापृथिवी को, विशाल अन्तरिक्ष को तथा छह बड़ी दिशाओं को धारण किये हुए हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में प्रविष्ट है और प्रभु की दीप्ति से दीप्त हो रहा है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्विराड्बृहती**॥

श्रमात्, तपसः (जातः)

यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ ३६॥

१. **यः**=जो प्रभु **श्रमात्**=श्रम से व **तपसः**=तप से **जातः**=प्रादुर्भूत होते हैं—जिन्हें श्रम व तप के द्वारा ही हृदयदेश में देखा जा सकता है। वे प्रभु **सर्वान् लोकान् समानशे**=सब लोकों को व्याप्त किये हुए हैं। **यः**=जिन प्रभु ने **सोमम्**=सोमशक्ति के पुञ्ज बननेवाले जीव को—वीर्यरक्षा द्वारा ज्ञानदीप्त जीव को—**केवलं चक्रे**=(क वल्) आनन्द में विचरण करनेवाला, अर्थात् मुक्त किया है। **तस्मै**=उस ज्योष्ठाय **ब्रह्मणे**=ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए **नमः**=हम प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—प्रभु-दर्शन श्रम व तप से होता है। वैसे वे प्रभु सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा सोम (वीर्य) का पुञ्ज बननेवाले साधक को प्रभु आनन्द में विचरनेवाला करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वातः, मनः, अपः

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन॥ ३७॥

१. **कथम्**=क्यों **वातः**=वायु **न इलयति**=स्थिर होकर शान्त (keep still, become quite) नहीं होता? **कथम्**=क्योंकर **मनः न रमते**=यह मन कहीं भी स्थिरता से रमता नहीं? **किम् सत्यं प्रेप्सन्तीः**=किस सत्य को प्राप्त करने की कामनावाले हुए-हुए ये **आपः**=जल **कदाचन**=कभी भी **न इलयन्ति**=स्थिर होकर शान्त नहीं होते? २. नितरन्तर चल रही वायु को देखकर जिज्ञासु के हृदय में जिज्ञासा होती है कि वायु किधर भागा चला जा रहा है? इसी प्रकार ये जल किस सत्य की खोज में निरन्तर बहते चल रहे हैं? यह मन भी अन्ततोगत्वा कहाँ रति का अनुभव करेगा? संसार के विषय तो कुछ ही देर बाद उसे निर्विण्ण कर डालते हैं।

भावार्थ—जिज्ञासु को इस निरन्तर बहते वायु व जलों को देखकर उत्कण्ठा होती है कि ये किधर भागे चले जा रहे हैं? मन भी किसी एक स्थान में रति का अनुभव क्यों नहीं करता?

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तपसि क्रान्तं, सलिलस्य पृष्ठे

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परितइव शाखाः॥ ३८॥

१. **भुवनस्य मध्ये**=सारे ब्रह्माण्ड में (ब्रह्माण्ड के अन्दर) वे **महद्यक्षम्**=महान् पूजनीय प्रभु स्थित हैं। सब पिण्डों में ओत-प्रोत सूत्र वे प्रभु ही तो हैं। **तपसि क्रान्तम्**=वे प्रभु तप में सबसे आगे बढ़े हुए हैं—सबको लाँघ गये हैं। वे **सलिलस्य**=(सत् लीनं अस्मिन्) प्रलयकाल में यह सब सत्तावाला जगत् जिसमें लीन हो जाता है, उस प्रधान (महद् ब्रह्म) के **पृष्ठे**=पृष्ठ पर ये प्रभु स्थित हैं—प्रकृति के अधिष्ठाता हैं। '**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्**'। २. **ये उ के च देवाः**=और जो कोई भी देव हैं, वे **तस्मिन्**=उस प्रभु में ही **छ्रयन्ते**=आश्रय करते हैं, इसी प्रकार आश्रय करते हैं **इव**=जैसेकि **वृक्षस्य**=वृक्ष के **स्कन्धः**=तने के **परितः**=चारों ओर **शाखाः**=शाखाएँ आश्रित होती हैं।

भावार्थ—वे प्रभु इस ब्रह्माण्ड के एक-एक पिण्ड में ओत-प्रोत सूत्र के समान हैं। वे तपोमय प्रभु ही प्रकृति के अधिष्ठाता हैं। उन प्रभु में ही सब देव आधारित हो रहे हैं—उस महान् देव से ही इन्हें देवत्व प्राप्त हो रहा है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती**॥

अङ्ग-प्रत्यङ्गों द्वारा प्रभु-पूजन

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ ३९॥

१. **यस्मै**=जिसके लिए और **यस्मै**=जिसके लिए ही **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **हस्ताभ्याम्**=हाथों से, **पादाभ्याम्**=पावों से **वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा**=वाणी, श्रोत्र व आँख से **सदा**=सदा **बलिम्**=पूजा (worship) को **प्रयच्छन्ति**=प्राप्त कराते हैं, और वस्तुतः इस पूजा के कारण ही देव बन पाते हैं। इन देवों के सब कार्य प्रभु-पूजन के लिए ही होते हैं। जो प्रभु **विमिते**=विविधरूपों में बने हुए इस मित (परिमित) संसार में **अमितम्**=असीम—अपरिमित व अनन्त है, **तम्**=उन्हीं को **स्कम्भं ब्रूहि**=सर्वाधार कहो। **सः एव**=वे ही **स्वित्**=निश्चय से **कतमः**=अतिशयेन आनन्दमय हैं।

भावार्थ—देवपुरुषों की सब अङ्गों से होनेवाली क्रियाएँ प्रभु-पूजन के रूप में होती हैं। इस परिमित संसार में वे अपरिमित प्रभु ही अतिशयेन आनन्दमय हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**४० अनुष्टुप्, ४१ आर्षीत्रिपदागायत्री**॥

'सृष्टि व प्रभु' को समझनेवाले में तीन बातें

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना।
सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ॥ ४०॥
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद। स वै गुह्यः प्रजापतिः॥ ४१॥

१. (क) **तस्य**=उसका **तमः अपहतम्**=अन्धकार सुदूर विनष्ट हो जाता है—उसका अज्ञान विनष्ट होकर उसका जीवन प्रकाशमय हो जाता है। (ख) **सः**=वह **पाप्मना**=पाप से **व्यावृत्तः**=दूर (हटा हुआ) होता है। (ग) **तस्मिन्**=उसमें वे **सर्वाणि**=सब **ज्योतींषि**=ज्योतियाँ होती हैं **यानि त्रीणि**=जो तीन **प्रजापतौ**=प्रजारक्षक प्रभु में हैं। ये ज्योतियाँ इसके जीवन में शरीर के स्वास्थ्य की दीप्ति के रूप में, मन के नैर्मल्य के रूप में तथा मस्तिष्क की ज्ञानज्योति के रूप में प्रकट होती हैं। २. उस व्यक्ति के जीवन में ये ज्योतियाँ प्रकट होती हैं, **यः**=जोकि **सलिले**=(सत् लीनम् अस्मिन्) यह कार्यजगत् जिसमें लीन होकर रहता है, उस प्रकृति में **तिष्ठन्तम्**=स्थित

हुए-हुए **हिरण्ययम्**=इस चमकीले (हिरण्मय) **वेतसम्**=(ऊतं स्यूतं) परस्पर सम्बद्ध लोक-लोकान्तरोंवाले संसार को **वेद**=जानता है और जो यह जानता है कि **सः**=वह **वै**=निश्चय से **प्रजापतिः**=प्रजापालक प्रभु **गुह्याः**=मेरी हृदय-गुहा में ही स्थित है। इसप्रकार जाननेवाला व्यक्ति अन्धकार व पाप से दूर होकर ज्योतिर्मय जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति इस चमकीले, परस्पर सम्बद्ध लोक-लोकान्तरोंवाले, प्रकृतिनिष्ठ संसार को जानता है तथा प्रभु को हृदयस्थ रूपेण प्रतीत करता है, वह अन्धकार से ऊपर उठता है, पाप से दूर होता है तथा प्रभु की ज्योतियों को प्राप्त करके 'स्वस्थ, निर्मल व दीप्त' जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विरूपे युवती

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम्॥ ४२॥

१. **एके**=कोई दो **युवती**=एक-दूसरे से नित्य संगत (यु मिश्रणे) **विरूपे**=तमः व प्रकाशमय विरुद्धरूपवाली उषा व रात्रिरूप तरुणियाँ **अभ्याक्रामम्**=बार-बार आ-आ और जा-जाकर **षण्मयूखम्**=छह दिशाओं व छह ऋतुओंवाले विश्वरूप **तन्त्रम्**=जाल को **वयतः**=बुन रही हैं। २. इनमें से **अन्या**=एक उषारूप युवति **तन्तून्**=सूर्यकिरणरूप तन्तुओं को **प्रतिरते**=फैलाती है, **अन्या**=दूसरी रात्रिरूप युवति **धत्ते**=उन सब किरणों को अपने अन्दर समेट लेती है। **न अपवृञ्जाते**=वे दोनों कभी अपने कार्य को नहीं छोड़तीं—विश्राम नहीं लेतीं, **न अन्तं गमातः**=न ही कार्य के अन्त तक पहुँचती हैं। उषा और रात्रि के रूप में यह कालचक्र चलता ही रहता है।

भावार्थ—उषा व रात्रिरूप युवतियों द्वारा छह ऋतुओंवाला कालरूप जाल बुना जा रहा है, निरन्तर बुना जा रहा है—पर यह बुनाई चल ही रही है—इसका कहीं अन्त ही नहीं आता।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वयन व उद्गिरण

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।
पुमानेनद्वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद्वि जभाराधि नाके॥ ४३॥

१. **परिनृत्यन्त्योः इव**=नृत्य-सा करती हुई **तयोः**=उन उषा व रात्रिरूप युवतियों में **यतरा परस्तात्**=कौन-सी परली है—कौन-सी पहले उत्पन्न हुई **अहं न विजानामि**=यह मैं नहीं जानता। इनका तो चक्र न जाने कब से चल ही रहा है। २. **पुमान्**=वह परम पुरुष प्रभु **एनत् वयति**=इस समस्त विश्वजाल को बुनता है, **पुमान् एनत् उत् गृणत्ति**=वह परम पुरुष ही इसे उधेड़ डालता है—इसे निगल लेता है। वह परम पुरुष ही **एनत्**=इसे **नाके अधि विजभार**=सुखमय आश्रय में अथवा आकाश में विहृत करता है—धारण करता है।

भावार्थ—यह उषा व रात्रि का चक्र 'अज्ञेय प्रारम्भ' वाला है। इस विश्वजाल को वे परम पुरुष प्रभु ही बुनते हैं व उधेड़ डालते हैं। वे ही आकाश में इसका धारण कर रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**स्कम्भः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्**॥

पञ्चपदानिचृत्पदपङ्क्तिर्वा (एकावसाना)

मयूखाः—सामानि

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे॥ ४४॥

१. **इमे**=ये **मयूखाः**=ज्ञानरश्मियाँ **दिवं उपतस्तभुः**=मस्तिष्करूप द्युलोक को थामनेवाली बनती हैं। जब साधक प्रभु से रचे हुए इस सृष्टियज्ञ को समझने का प्रयत्न करता है, तब उसका मस्तिष्क धीमे-धीमे ज्ञानरश्मियों से दीप्त हो उठता है। ये ज्ञानी पुरुष **सामानि**=साममन्त्रों द्वारा उपासनाओं को **चक्रुः**=करते हैं। ये साम **तसराणि**=(तस् उपक्षये) सब दुःखों का उपक्षय करनेवाले होते हैं, तथा **वातवे**=गति द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाले होते हैं (वा गतिगन्धनयोः)।

भावार्थ—साधक लोग ज्ञान द्वारा मस्तिष्क को दीप्त करते हुए उपासना द्वारा सब बुराइयों व दुःखों को दूर करते हैं।

आठवें सूक्त का ऋषि 'कुत्स' है (कुथ हिंसायाम्)—सब बुराइयों का हिंसन करनेवाला। यह प्रभु-स्मरण करता हुआ ही ऐसा बन पाता है। यह स्तवन करता हुआ कहता है कि—

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्विराड्बृहती**॥

केवलं स्वः

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १॥

१. **यः**=जो **भूतं च भव्यं च**=भूत में हो चुके और भविष्यत् में होनेवाले **यः च सर्वम्**=और जो वर्त्तमान में विद्यमान सब लोकों का **अधितिष्ठति**=अधिष्ठाता है। **यस्य च स्वः**=और जिसका प्रकाश **केवलम्**=आनन्द में संचरण करानेवाला है, **तस्मै ज्येष्ठाय**=उस सर्वश्रेष्ठ—सर्वमहान् **ब्रह्मणे नमः**=ब्रह्म के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—प्रभु कालत्रयी में होनेवाले सब लोक-लोकान्तरों के अधिष्ठाता हैं। प्रभु का प्रकाश हमें आनन्द में विचरण कराता है। हम उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्**॥

स्कम्भ (ब्रह्म)

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ २॥

१. प्रभु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधारभूत स्कम्भ हैं। उस **स्कम्भेन**=सर्वाधार स्कम्भभूत प्रभु के द्वारा **विष्टभिते**=विशेषरूप से थामे हुए **इमे**=ये **द्यौः च भूमिः च**=द्युलोक और पृथिवीलोक **तिष्ठतः**=स्थित हैं। **इदम्**=यह **सर्वम्**=सब **आत्मन्वत्**=आत्मावाला, **यत् प्राणत्**=जो प्राण धारण कर रहा है—श्वासोच्छ्वास ले-रहा है (चर) **यत् च निमिषत्**=और जो आँखे बन्द किये हुए पड़ा है, यह सब जगत् **स्कम्भे**=उस सर्वाधार प्रभु में ही आश्रित है।

भावार्थ—प्रभु द्युलोक व पृथिवीलोक को धारण कर रहे हैं। सब प्राणी—यह चराचर जगत्—उस प्रभु के ही आधार में है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गुणातीत की प्रभु के समीप स्थिति

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्नन्या अर्कमभितोऽविशन्त।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश॥ ३॥

१. **तिस्रः प्रजाः**='सात्त्विक, राजस् व तामस्' स्वभाववाली प्रजाएँ **ह अति आयम् आयन्**=निश्चय से अत्यधिक (बारम्बार) आवागमन को प्राप्त होती हैं, परन्तु **अन्याः**=इनसे भिन्न

गुणातीत स्थितिवाली (नित्यसत्त्वस्थ) प्रजाएँ **अर्कम् अभितः नि अविशन्त**=उस पूजनीय प्रभु के समीप स्थित होती हैं। २. वे प्रभु **ह**=निश्चय से **बृहन्**=महान् होते हुए, **रजसः विमानः**=लोकों को विशेष मानपूर्वक बनाते हुए **तस्थौ**=स्थित हैं, वे **हरितः**=सूर्यसम दीप्तिवाले प्रभु **हरिणीः**=समस्त दिशाओं में **आविवेश**=प्रविष्ट हो रहे हैं। वस्तुतः उस तेजोदीप्त प्रभु की दीप्ति से ही सब पिण्ड दीप्त होते हैं '**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**'।

भावार्थ—गुणों से बद्ध प्रजाएँ आवागमन के चक्र में चलती हैं। गुणातीत व्यक्ति प्रभु के समीप स्थित होते हैं। वे महान् प्रभु सब लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके उनमें स्थित हो रहे हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु का कालचक्र

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये॥ ४॥

१. प्रभु-निर्मित कालचक्र का **एकं चक्रम्**=संवत्सररूप एक चक्र है। इसकी **द्वादश प्रधयः**=बारह मासरूपी बारह प्रधियाँ (पुट्ठियाँ) हैं। **त्रीणि नभ्यानि**='सरदी, गरमी व वर्षा' रूप तीन ऋतुएँ—इस चक्र में तीन नाभियाँ हैं। **तत् कः उ चिकेत्**=उस कालचक्र के रहस्य को कोई विरला ही जान पाता है। २. **तत्र**=उस कालचक्र में **त्रीणी शतानि**=तीन सौ **शंकवः**=बड़े दिनरूप खूँटे, **च**=तथा **षष्टिः खीलाः**=साठ छोटे दिनरूप कील **आहताः**=जड़े हुए हैं—आहत(लगे हुए) हैं। **ये**=जो शंकु और खील **अ-विचाचलाः**=अकुटिल गतिवाले हैं, सदा ठीक गति से चलनेवाले हैं।

भावार्थ—प्रभु का बनाया हुआ कालचक्र सचमुच अद्भुत ही है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥,

षड् यमाः—एकः एकजः

इदं सवितर्वि जानीहि षडयमा एकं एकजः।
तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते य एषामेकं एकजः॥ ५॥

१. हे **सवितः**=अपने अन्दर सोम का सवन करनेवाले जीव! **इदं विजानीहि**=तू यह समझ ले कि **षड्**=पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन—ये छह तो **यमाः**=यम हैं—परस्पर जोड़े के रूप में रहनेवाले हैं। अकेली आँख नहीं देखती, मन से मिलकर ही देखनेवाली बनती है। इसी प्रकार कान आदि भी मन से मिलकर ही अपना कार्य कर पाते हैं। **एकः**=एक आत्मा **एकजः**=अकेला ही शरीर में प्रादुर्भूत हुआ करता है। '**एकः प्रजायते जन्तु एक एव विलीयते**'। २. **यः**=जो यह **एषाम्**=इन्द्रियों आदि में **एकः**=एक जीव **एकजः**=अकेला ही प्रादुर्भूत होनेवाला है, **तस्मिन् ह**=उसमें ही निश्चय से ये इन्द्रियाँ व मन **आपित्वम्**=मित्रता को **इच्छन्ते**=चाहते हैं। उस आत्मतत्त्व की मित्रता में ही इन सबका कार्य चलता है। उसके शरीर को छोड़ते ही ये सब भी शरीर को छोड़ जाते हैं।

भावार्थ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन—ये सब मिलकर ही कार्य करनेवाले हैं। जीव अकेला ही संसार में जन्म लेता है, अकेला ही विलीन होता है। इस 'एकज' आत्मा में ही इन्द्रियाँ व मन मित्रता को चाहते हैं। उसके शरीर में आने पर ये शरीर में आते हैं, उसके छोड़ जाने पर ये भी शरीर को छोड़ जाते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

जरन्नाम

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम्।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम्॥ ६॥

१. वह **आविः**=एक-एक पदार्थ में अपनी महिमा से प्रकट होनेवाला, **जरत्**=स्तुति के योग्य, **नाम**=प्रसिद्ध **महत्**=महान् व पूजनीय, **पदम्**=पाने के योग्य (पद गतौ) **सत्**=अविनाशी प्रभु गुहा **निहितम्**=हृदयरूप गुहा में स्थित हैं। २. **तत्र**=उस प्रभु में ही **इदं सर्वम्**=यह सब **आर्पितम्**=अर्पित हुआ-हुआ है। **एजत्**=गति करता हुआ व **प्राणत्**=प्राणों को धारण करता हुआ यह सब प्राणिजगत् (तत्र) **प्रतिष्ठितम्**=उस प्रभु में प्रतिष्ठित है।

भावार्थ—वे सर्वत्र प्रकट महिमावाले पूज्य प्रभु हमारे हृदयों में स्थित हैं। उन प्रभु में ये सारा ब्रह्माण्ड व प्राणिजगत् प्रतिष्ठित है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**पराबृहती** ॥

एकचक्रं—एकनेमि

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव॥ ७॥

१. वे प्रभु **एकचक्रम्**=अद्वितीय कर्त्ता **वर्तते**=हैं। **एकनेमि**=(नेमिः नयनं चालनम्) अद्वितीय संचालनवाले हैं। **सहस्राक्षरम्**=हज़ारों (अक्षर=अक्षय) अविनाशी शक्तियोंवाले हैं। **पुरः**=आगे व **पश्चा**=पीछे **प्र**=प्रकर्षेण **नि**=निश्चयपूर्वक वर्त्तमान हैं—सर्वत्र व्याप्त हैं। ये प्रभु **अर्धेन**=एक अंश से **विश्वम्**=सम्पूर्ण **भुवनम्**=भुवन को **जजान**=प्रादुर्भूत कर रहे हैं (पादोऽस्य विश्वा भूतानि) **यत्**=जो **अस्य**=इस अविनाशी प्रभु का **अर्धम्**=समृद्ध (ऋधु वृद्धौ) स्वरूप है **तत् क्व बभूव**=वह कहाँ है? (त्रिपादस्यामृतं दिवि) 'प्रभु का वह समृद्ध स्वरूप किसी अन्य आधार में स्थित हो ऐसी बात नहीं है।'

भावार्थ—वे प्रभु अद्वितीय कर्ता, अद्वितीय संचालक, अनन्तशक्तियोंवाले, आगे-पीछे सर्वत्र हैं। प्रभु के एकदेश में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकट हो रहा है। प्रभु का अपना समृद्धस्वरूप, अन्य आधारवाला न होता हुआ प्रकाशमय है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पञ्चवाही

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः॥ ८॥

१. **पञ्चवाही**=पञ्चभूतों से बने हुए संसार का वहन करनेवाले वे प्रभु **अग्रं वहति**=हमें आगे और आगे ले-चलते हैं। **एषाम्**=इन भूतों के **प्रष्टयः**=(प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्) जिज्ञासु लोग—ज्ञान को प्राप्त करने की कामनावाले लोग—**युक्ताः**=समाहित हुए-हुए (युज समाधौ) **अनुसंवहन्ति**=उस प्रभु के पीछे-पीछे अपनी जीवन-यात्रा का संवहन करते हैं। २. **अस्य**=इस प्रभु का **अयातम्**=न जाना—शरीर में आना व ठहरना तथा **यातम्**=जाना—शरीर को छोड़ना—**न ददृशे**=नहीं दिखता। वे प्रभु जीव की भाँति शरीर में आते-जाते नहीं रहते। **परं नेदीयः**=वे दूर-से-दूर होते हुए समीप हैं, तथा **अवरं दवीयः**=समीप-से-समीप होते हुए दूर हैं (तद्दूरे तद्वन्तिके दूरात् सुदूरे, तदिहान्तिके च)।

भावार्थ—प्रभु पंचभूतात्मक जगत् का वहन करनेवाले हैं। समाहित जिज्ञासु लोग प्रभु के पीछे-पीछे अपनी यात्रा का संवहन करते हैं। प्रभु जीव की भाँति शरीर में आते-जाते नहीं रहते। वे दूर-से-दूर व समीप-से-समीप हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'तिर्यग्बिल ऊर्ध्वबुध्न' चमस

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥ ९॥

१. **तिर्यग्बिलः**=तिरछे मुखवाला तथा **ऊर्ध्वबुध्नः**=ऊपर मूल-(पेंदे Bottom)-वाला **चमसः**=एक पात्र है। (शिर एव अर्वाग् बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः—बृ० २।२।३) यह शिर ही वह पात्र है। **तस्मिन्**=उसमें **विश्वरूपं यशः**=नाना रूपवाले यश (An Object of glory) **निहितम्**=रक्खे हैं। (प्राणा वै यशो विश्वरूपम्—बृ० २।२।३) प्राण ही नानारूप यश हैं, वे इस पात्र में रक्खे गये हैं। २. **तत्**=(तत्र) वहाँ उस पात्र में **सप्त ऋषयः**=सात ऋषि (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखे व मुख **साकम्**=साथ-साथ **आसते**=आसीन होते हैं। दो कान ही 'गौतम-भारद्वाज' हैं, दो आँखें ही 'विश्वामित्र-जमदग्नि' हैं, दो नासिका छिद्र 'वसिष्ठ और कश्यप' हैं तथा मुख 'अत्रि' हैं (बृ २।२।४)। ये वे ऋषि हैं **ये**=जो **अस्य महतः**=इस महनीय देव-मन्दिर के (सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते) **गोपाः**=रक्षक (पहरेदार) हैं।

भावार्थ—शरीर में शिर 'तिर्यग्बिल, ऊर्ध्वबुध्न' चमस है। इसमें नाना यशस्वी पदार्थ रक्खे गये हैं। यहाँ 'दो कान, दो आँखें' दो नासिका-छिद्र व मुख' सात ऋषि हैं। ये इस महनीय देव-मन्दिर (शरीर) के रक्षक हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुबगर्भा त्रिष्टुप्**॥

ओ३म्

या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम्॥ १०॥

१. मैं **त्वा**=आपसे **ताम्**=(ऋचं) उस स्तुत्य वाणी को **पृच्छामि**=पूछता हूँ **या**=जो **पुरस्तात् युज्यते**=मन्त्रों के प्रारम्भ में जोड़ी जाती है (ओम् अभ्यादाने—पा०), **च**=और **या**=जो **पश्चात्**=पीछे—समाप्ति पर भी जुड़ती है (प्रणवष्टेः)। **या**=जो वाणी **विश्वतः युज्यते**=चारों ओर से जुड़ती है, **च**=और **या**=जो **सर्वतः**=सब कालों में (सब प्रकार) जुड़ती है। २. **यया**=जिस वाणी से **यज्ञः**=सब श्रेष्ठ कर्म **प्राङ् तायते**=आगे और आगे विस्तृत किये जाते हैं। **सा**=वह ओमरूप वाणी ही **ऋचाम्**=स्तुत्यवाणियों में **क-तमा**=अतिशयित आनन्द देनेवाली है।

भावार्थ—मन्त्रों के प्रारम्भ में व अन्त में 'ओम्' का उच्चारण होता है। सब ओर, सब कालों में 'ओम्' की ध्वनि ही उपादेय है। सब कार्य 'ओम्' से ही प्रारम्भ करने चाहिएँ। इसी से यज्ञों का प्रारम्भ किया जाता है। यह स्तुत्यवाणियों में अतिशयित आनन्द प्राप्त करानेवाली है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**जगती**॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत्।
तदाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव॥ ११॥

१. **यत् एजति**=जो कम्पित होता है, **पतति**=गतिवाला होता है, **यत् च तिष्ठति**=और जो स्थित होता है, **प्राणत् अप्राणत्**=श्वास लेता हुआ, या न श्वास लेता हुआ है, **यत् च**=और जो **निमिषत् भुवत्**=सदा आँखे मूँदे हुए है, **तत्**=उस सबको, **पृथिवीम्**=इस सम्पूर्ण चराचर पदार्थों की आधारभूत पृथिवी को **दाधार**=वे प्रभु धारण कर रहे हैं—'ओम्' शब्द वाच्य प्रभु ही इस सबके आधार हैं। २. **विश्वरूपं तत्**=वह नानारूपोंवाला ब्रह्माण्ड **संभूय**=उस प्रभु के साथ होकर—उसी के एकदेश में स्थिर होकर—**एकम् एव भवति**=वह एक प्रभु ही हो जाता है। प्रभु-मध्य पतित (स्थित) होने से यह प्रभु के ग्रहण से ही गृहीत होता है—इसकी अलग सत्ता नहीं दिखती। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का यही तो अर्थ है।

भावार्थ—सब प्राणिमात्र व सब पिण्ड प्रभु से धारण किये जा रहे हैं। प्रभु से भिन्न देश में स्थित न होने से ये प्रभु के ग्रहण से ही गृहीत होते हैं—ये सब प्रभु में ही समाये हुए हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**पुरोबृहतीत्रिष्टुब्गर्भाऽऽर्षीपङ्क्तिः** ॥

नाक—पालः

अनन्तं विततं पुरुत्राऽनन्तमन्तवच्चा समन्ते।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य॥ १२॥

१. **अनन्तम्**=अनन्त—सीमारहित-सा—परम कारण 'प्रकृति' नामक पदार्थ ही **पुरुत्रा विततम्**=नाना रूपों में—कार्यपदार्थों में फैला हुआ है। **अनन्तम्**=वह अन्तरहित-सा कारणपदार्थ, **च अन्तवत्**=और अन्तवाला सीमायुक्त कार्यपदार्थ—ये दोनों **सम् अन्ते**=एक-दूसरे की सीमा हैं—कार्यकारणभाव के रूप से एक-दूसरे से मिले हुए हैं। २. **अस्य**=इस विश्व के **भूतम्**=अतीत में उत्पन्न हुए-हुए **उत**=और **भव्यम्**=भविष्य में उत्पन्न होनेवाले को **विद्वान्**=जाननेवाला वह **नाकपालः**=मोक्षधाम का भी पालक प्रभु **ते विचिन्वन्**=उन अनन्त और अन्तवाले कारणात्मक व कार्यात्मक जगत् को विविक्तरूप से जानता हुआ **चरति**=सर्वत्र गतिवाला है—और प्रलय के समय इस सबको अपने अन्दर ले-लेनेवाला (खा जानेवाला) है।

भावार्थ—अनन्त-सी प्रकृति इन अन्तवाले कार्य-पदार्थों को जन्म देती है। ये दोनों कारण-कार्य परस्पर सम्बद्ध सीमावाले हैं—जुड़े हुए हैं। वे भूत-भव्य के ज्ञाता प्रभु इनका विवेक करते हुए सर्वत्र गतिवाले हो रहे हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कतमः—केतुः

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ १३॥

१. वह **प्रजापतिः**=सब प्रजाओं का रक्षक प्रभु **गर्भे अन्तः चरति**=सब पदार्थों के अन्दर गतिवाला है—सबमें व्याप्त है। **अदृश्यमानः**=न देखा जाता हुआ—इन्द्रियों का विषय न होता हुआ वह प्रभु **बहुधा विजायते**=नाना रूपों से प्रादुर्भूत होता है। सूर्य और चन्द्र में वह 'प्रभा' रूप से, अग्नि में 'तेज' रूप से, पृथिवी में 'पुण्यगन्ध' रूप से, जलों में 'रस' रूप से तथा नरों में 'पौरूष' रूप से वही प्रकट हो रहा है। २. वे प्रभु **अर्धेन**=अपने एकदेश में स्थित इस प्रकृति से **विश्वं भुवनम्**=सम्पूर्ण भुवन को **जजान**=प्रादुर्भूत करते हैं। **यत्**=जो **अस्य**=इस प्रभु का **अर्धम्**=इस प्रकृति से ऊपर जो समृद्धरूप है **सः**=वह **कतमः**=अत्यन्त आनन्दमय व **केतुः**=प्रकाशमय (A ray of light) है।

भावार्थ—वह प्रभु अदृश्य होते हुए भी प्रत्येक पदार्थ में अपनी महिमा से प्रादुर्भूत हो रहे

हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड प्रभु के एकदेश में जन्म व लयवाला होता है। प्रभु का अपना समृद्धरूप आनन्द व प्रकाशमय है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दृश्य होते हुए भी अदृश्य

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यं ँ म्।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः॥ १४॥

१. **इव**=जैसे **कुम्भेन**=घड़े के द्वारा **उदकं ऊर्ध्वं भरन्तम्**=पानी को ऊपर भरते (खेंचते) हुए **उदहार्यम्**=कहार को **सर्वे**=सब **चक्षुषा पश्यन्ति**=आँख से देखते हैं, इसी प्रकार समुद्ररूप कूएँ से, मेघरूप घड़ों के द्वारा, जल को ऊपर अन्तरिक्ष में पहुँचाते हुए प्रभु को सब आँख से देखते हैं। २. प्रभु अन्तरिक्ष में पानी को ऊपर ले-जा रहे हैं—कितनी अद्भुत उस उदहार्य की महिमा है? परन्तु **सर्वे**=सब **मनसा न विदुः**=मन से उस प्रभु को पूरा जान नहीं पाते। वे प्रभु 'अचिन्त्य' हैं 'अव्यक्तोऽयमचिन्त्योयमविकार्योऽयमुच्यते'। सर्वत्र प्रभु की कृति दृष्टिगोचर होती है, परन्तु वे प्रभु हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनते।

भावार्थ—सर्वत्र प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है, परन्तु वे प्रभु दीखते नहीं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**भूरिग्बृहती**॥

महद् यक्षम्

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति॥ १५॥

१. **दूरे**=दूर-से-दूर होता हुआ भी वह प्रभु **पूर्णेन वसति**=पालन व पूरण करनेवाले ज्ञानी पुरुष के साथ रहता है। ज्ञानी पुरुष हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करते हैं। **ऊनेन**=परिहीन शक्तियों व ज्ञानवालों से **दूरे हीयते**=वे प्रभु दूर छोड़े जाते हैं, अर्थात् अज्ञानियों व निर्बलों से वे प्रभु दूर ही होते हैं। २. वे **महद् यक्षम्**=महान् पूजनीय प्रभु **भुवनस्य मध्ये**=सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। **तस्मै**=उन प्रभु के लिए **राष्ट्रभृतः बलिं भरन्ति**=राष्ट्र का धारण करनेवाले, अर्थात् केवल अपने लिए न जीनेवाले लोग बलि को—भागधेय को—प्राप्त कराते हैं, अर्थात् अर्जित धन का यज्ञों में विनियोग करके यज्ञशेष का ही वे सेवन करते हैं। इसप्रकार ही तो प्रभु का पूजन होता है **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः'**।

भावार्थ—प्रभु ज्ञानियों के साथ निवास करते हैं, अज्ञानियों से वे दूर हैं। वे पूज्य प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं। यज्ञशील पुरुष ही प्रभु को पूजते व पाते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्येष्ठं (ब्रह्म)

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन॥ १६॥

१. **यतः**=जिस प्रभु के द्वारा **सूर्यः उदेति**=यह सूर्य उदय को प्राप्त करता है, **यत्र च**=और जिस प्रभु के आधार में ही **अस्तं गच्छति**=अस्त होता है, **तत् एव**=उस प्रभु को ही **अहं ज्येष्ठं मन्ये**=मैं सर्वश्रेष्ठ जानता हूँ, **उ**=और **तत्**=उस ब्रह्म को **किञ्चन न अत्येति**=कुछ भी (कोई भी) लाँघ नहीं पाता।

भावार्थ—प्रभु ही सूर्योदय व सूर्यास्त के—जगत् की उत्पत्ति व लय के आधार व

मूलकारण हैं। वे प्रभु ही सर्वश्रेष्ठ हैं—उनसे अतिक्रमण करके कोई भी पदार्थ नहीं है (न तत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः)।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आदित्य, अग्नि, हंस

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्॥ १७॥

१. **ये**=जो वेदज्ञ **अर्वाङ्**=इस काल में, **मध्ये**=मध्य में **उत वा**=और **पुराणम्**=पुराण काल में, अर्थात् सदा ही **वेदम्**=ज्ञान को **विद्वांसम्**=जाननेवाले ईश को **अभितः**=चारों ओर अथवा दिन के प्रारम्भ व अन्त में—दिन के दोनों ओर—प्रातः-सायं **वदन्ति**=वर्णित व स्तुत करते हैं, **ते सर्वे**=वे सब **आदित्यम् एव परिवदन्ति**=ज्ञानों का अपने में आदान करनेवाले प्रभु को ही कहते हैं। स्तोता लोग यही कहते हैं कि वे प्रभु सदा ही ज्ञानमय हैं—सम्पूर्ण ज्ञानों का आदान करनेवाले वे प्रभु 'सूर्यसम ज्योति' ही तो हैं 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः'। २. वे स्तोता उस प्रभु को **द्वितीयम्**=(द्वयोः पूरणः) जीव व प्रकृति दोनों का पूरण करनेवाला और **अग्निम्**=अग्रणी प्रतिपादित करते हैं, **च**=तथा वे प्रभु को **त्रिवृतम्**=(त्रिषु वर्तते) तीनों कालों व तीनों लोकों में सदा सर्वत्र वर्त्तमान **हंसम्**=(हन्ति) पापों का विनाशक कहते हैं। प्रभु की सर्वव्यापकता का स्मरण हमें पापों से बचाता है।

भावार्थ—प्रभु सदा ही ज्ञानस्वरूप हैं। हम प्रातः-सायं प्रभु का इस रूप में स्मरण करें कि वे सब ज्ञानों का अपने में आदान करनेवाले 'आदित्य' हैं, प्रकृति व जीव का पूरण करनेवाले वे प्रभु हमें आगे ले-चलनेवाले 'अग्नि' हैं, सदा सर्वत्र वर्त्तमान वे प्रभु हमें पापों से बचानेवाले—हमारी पापवृत्तियों को नष्ट करनेवाले 'हंस' है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

हंस—हरि

सहस्राह्न्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा॥ १८॥

१. **स्वर्गं पततः**=सदा आनन्दमय लोक में गति करनेवाले—सदा आनन्दस्वरूप—**हंसस्य**=हमारे पापों का नाश करनेवाले और पापनाश द्वारा **हरेः**=दुःखों का हरण करनेवाले **अस्य**=इस प्रभु के **पक्षौ**=सृष्टि निर्माण (दिन) व प्रलय (रात्रि)-रूप दो पक्ष **सहस्राह्न्यम्**=सहस्र युगपर्यन्त परिणामवाले दिन व रात में **वियतौ**=फैले हुए हैं व विशिष्टरूप से नियमबद्ध हैं (**सहस्रयुग-पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः, रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः**)। २. **सः**=वे प्रभु **सर्वान् देवान्**=तेतीस-के-तेतीस सब देवों को **उरसि उपदद्य**=अपने हृदय में—एकदेश में—ग्रहण करके **विश्वा भुवनानि संपश्यन्**=सब लोकों को सम्यक् देखते हुए—उनका धारण करते हुए (सं दृश् to look-after) **याति**=सर्वत्र प्राप्त होते हैं(या प्रापणे)।

भावार्थ—सदा आनन्दमय लोक में निवास करनेवाले, पापविनाशक, दुःखनिवारक प्रभु के सृष्टि-निर्माण व प्रलयरूप दिन व रात सहस्रयुगों के परिणामवाले हैं। वे प्रभु सब देवों को अपने में धारण करते हुए, सब लोकों को देखते हुए सर्वत्र प्राप्त हो रहे हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यस्मिन् ज्येष्ठम् अधिश्रितम्

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणाऽर्वाङ् वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम्॥ १९॥

१. **यस्मिन् ज्येष्ठम् अधिश्रितम्**=जिस उपासक के हृदय में वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु अधिश्रित हुए हैं—निरन्तर ठहरे हैं, वह पुरुष **सत्येन ऊर्ध्वः तपति**=सत्य से ऊँचा उठकर—सत्य के द्वारा उन्नत होकर दीप्त होता है—चमकता है, अर्थात् यह ब्रह्मनिष्ठ पुरुष कभी असत्य नहीं बोलता। यह **ब्रह्मणा**=ज्ञान के द्वारा **अर्वाङ् विपश्यति**=नीचे (Downword) देखता है—नम्र होता है तथा **प्राणेन**=प्राणशक्ति के द्वारा **तिर्यङ्**=एक छोर से दूसरे छोर तक (Transverse)—सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों में **प्राणति**=प्रकर्षेण जीवन-शक्तिवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति 'शरीर में प्राणशक्ति-सम्पन्न, मन में सत्यपूतात्मा तथा मस्तिष्क में ज्ञानविनीत' होता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अरणी (दो अरणियाँ)

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु।
स विद्वाञ्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत्॥ २०॥

१. **यः**=जो उपासक **वै**=निश्चय से **ते अरणी**=उन दो अरणियों को—स्वदेहरूप अधरारणि तथा प्रणवरूप उत्तरारणि को **विद्यात्**=जानता है, **याभ्याम्**=जिन दो अरणियों के द्वारा **वसु**=सबको बसानेवाला वह प्रभु **निर्मथ्यते**=मथा जाता है—मथकर प्रकाशित किया जाता है। **सः विद्वान्**=वह दोनों अरणियों को जाननेवाला पुरुष ही **ज्येष्ठं मन्येत**=उस सर्वश्रेष्ठ प्रभु का मनन कर पाता है। **सः**=वही **महत्**=महनीय **ब्राह्मणम्**=ब्रह्मज्ञान को—वेदज्ञान को **विद्यात्**=जानता है। २. **'स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥** —श्वेता० १।१४। देह अधरारणि है और प्रणव उत्तरारणि। ध्यान के द्वारा इनका मथन होता है और परमगूढ़ आत्मतत्त्व का दर्शन हुआ करता है।

भावार्थ—हम इस मानव-शरीर को प्राप्त करके प्रणव (ओम्) का मानस जप करें। इसी से पवित्र हुए-हुए हृदय में प्रभु के प्रकाश की प्राप्ति होगी।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अत्ता चराचरग्रहणात्

अपादग्रे समभवत्सो अग्रे स्वराभरत्।
चतुष्पाद्भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम्॥ २१॥

१. **अग्रे**=सृष्टि के पूर्व **सः**=वे परम पुरुष 'प्रभु' **अपात्**=(अ, पद् गतौ) अविशेषरूप—'अमात्र' स्वरूप **सम् अभवत्**=थे। वे प्रभु **अग्रे**=सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व **स्वः आभरत्**=प्रकाशमय रूप को धारण करते थे। २. सृष्टि के होने पर वे प्रभु **चतुष्पात् भूत्वा**='प्रकाशवान्', 'अनन्तवान्, ज्योतिष्मान् व आयतनवान्' रूप चारों पादोंवाले होकर **भोग्यः**=भोगने में उत्तम वे प्रभु **सर्वं भोजनम् आदत्त**=सारे ब्रह्माण्ड को भोजन के रूप में ग्रहण कर लेते हैं। **'अत्ता चराचर-ग्रहणात्'**=चर-अचर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने में लेने से वे 'अत्ता' कहलाते हैं। इसप्रकार सारे ब्रह्माण्ड को कोई भी अन्य अपना भोजन नहीं बना पाता एवं वे प्रभु 'भोक्ता' हैं।

भावार्थ—सृष्टि से पूर्व प्रभु 'अमात्र' के रूप में हैं। वे प्रकाश का पोषण किये हुए हैं। सृष्टि में वे प्रभु चतुष्पाद् होकर—'प्रकाशवान्, अनन्तवान्, ज्योतिष्मान् व आयतनवान्' होकर सारे ब्राह्माण्ड को भोजन के रूप में लील लेनेवाले सर्वोत्तम भोक्ता हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥

'उत्तरावान् सनातन' देव का उपासन

भोग्यो॑ भव॒दथो॒ अन्न॑मदद् ब॒हु। यो दे॒वमु॒त्तरा॑व॒न्तमुपासा॑तै सना॒तन॑म्॥ २२॥

१. **यः**=जो पुरुष **देवम्**=उस प्रकाशमय **उत्तरावन्तम्**=श्रेष्ठ गुणों की चरम सीमारूप (प्रत्येक गुण absolute निरपेक्षरूप से प्रभु में ही तो है) **सनातनम्**=सदा से विद्यमान प्रभु को **उपासाते**=पूजता है, वह भी **भोग्यः**=उत्तम भोगवाला **भवत्**=होता है, **अथो**=और **बहु अन्नम् अदत्**=बड़े लम्बे काल तक अन्न खानेवाला होता है, अर्थात् सुदीर्घ जीवन प्राप्त करता है।

भावार्थ—'उत्तरावान् सनातन' देव का स्मरण पुरुष को उत्तम भोक्ता व सुदीर्घ काल तक अन्न खानेवाला बनाता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सनातनः-पुनर्णवः

स॒ना॒तन॑मेनमाहु॒रु॒ताद्य स्या॒त्पुन॑र्णवः।
अ॒हो॒रा॒त्रे प्र जा॑येते अ॒न्यो अ॒न्यस्य॑ रू॒पयोः॥ २३॥

१. **एनम्**=इस प्रभु को **सनातनं आहुः**=सनातन कहते हैं, परन्तु **उत अद्य**=वह तो आज भी **पुनर्णवः**=फिर नये-का-नया ही है। जैसे **अहोरात्रे**=दिन व रात **अन्यः अन्यस्य रूपयोः**=एक-दूसरे के रूपों में से **प्रजायेते**=उत्पन्न होते हैं। २. दिन से रात्रि पैदा होती है और रात्रि से दिन पैदा होता है। ये रात और दिन नित्य नये-ही-नये लगते हैं। इसी प्रकार सनातन भी वे प्रभु नित नये-ही नये हैं।

भावार्थ—सनातन होते हुए भी वे प्रभु नवीन-ही-नवीन हैं। वे कभी जीर्ण नहीं होते।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

देवः रोचते एष एतत्

श॒तं स॒हस्र॑म॒युतं॒ न्य ∫ र्बुदमसंख्येयं स्वम॑स्मि॒न्नि॑विष्टम्।
तद॑स्य घ्नन्त्य॒भिप॑श्यत॒ एव॒ तस्मा॒द्दे॒वो रो॑चत॒ एष॒ एत॑त्॥ २४॥

१. **अस्मिन्**=इस प्रभु में **शतम्**=सैकड़ों, **सहस्रम्**=हज़ारों, **न्यर्बुदम्**=लक्षों व **असंख्येयम्**=गणनातीत **स्वम्**=धन **निविष्टम्**=स्थापित है। **अस्य**=इस **अभिपश्यतः एव**=सब ओर देखते हुए प्रभु के **तत्**=इस तेज को ही **घ्नन्ति**=सब सूर्य आदि लोक प्राप्त करते हैं। सूर्य आदि पिण्डों में अपना तेज नहीं, उनमें इस तेज को प्रभु ही स्थापित करते हैं। '**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**'। **तस्मात्**=उस कारण से **एतत्**=यह सूर्य आदि चमकता हुआ जो पिण्डमात्र है, **एषः**=यह **देवः रोचते**=प्रकाशमय प्रभु ही चमक रहा है, अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारा आदि में प्रभु की दीप्ति ही दीप्त हो रही है।

भावार्थ—उस प्रभु में अनन्त ऐश्वर्य स्थापित है। सब ओर देखते हुए वे प्रभु ही इन सब पिण्डों को दीप्त करते हैं, अतः इन सूर्य आदि पिण्डों में प्रभु की दीप्ति ही दीप्त हो रही है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

एक अणु, दूसरी अदृश्य-सी तथा तीसरी इनमें व्याप्त (तीन सत्ताएँ)

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥ २५॥

१. **एकम्**=एक पुरुष (जीवात्मा) **बालात् अणीयस्कम्**=बाल से भी अत्यन्त सूक्ष्म (अणुपरिमाण) है ('बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते'—श्वे०) **उत**=और **एकम्**=प्रकृति **न इव दृश्यते**=नहीं-सी दिखती—सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्थारूप वह प्रकृति भी अव्यक्त-सी रहती है। २. **ततः**=उन दोनों से भी सूक्ष्मतम **परिष्वजीयसी**=आलिंगन करती हुई—सर्वत्र व्याप्त होती हुई **देवता**=देवता है—प्रभु है। **सा मम प्रिया**=वही मेरी प्रीति का कारण बनती है। जब मैं प्रकृति से ऊपर उठकर उस देवता के सम्पर्क में आता हूँ तब एक अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करता हूँ।

भावार्थ—आत्मा बाल से सूक्ष्मतर अणुपरिमाणवाला है। प्रकृति भी आँखों का विषय न बनती हुई अव्यक्त है। इनके अन्दर व्याप्त इनका आलिंगन करनेवाले देवता प्रभु हैं। वे ही मेरी प्रीति का कारण बनते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**द्व्युष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप्** ॥

मर्त्यस्य गृहे इयं कल्याणी अजरा अमृता

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥ २६॥

१. **इयम्**=यह, गतमन्त्र में वर्णित, 'परिष्वजीयसी' देवता **कल्याणी**=हमारा कल्याण करनेवाली है। **अजरा**=कभी जीर्ण नहीं होती, **मर्त्यस्य**=मरणधर्मा जीव के **गृहे**=इस शरीरगृह में **अ-मृता**=न मरनेवाली है। शरीर में आत्मा के साथ परमात्मा का भी निवास है। शरीर में ममत्व रखनेवाला आत्मा तो 'जन्म-मरण' के चक्र में फँसता है, परन्तु इसमें रहता हुआ भी परमात्मा जन्म-मरण के चक्र से ऊपर है। २. **यस्मै कृता**=जिस जीव के लिए, कर्मफल भोगने के लिए आधार रूप से, यह शरीर-नगरी बनायी जाती है, **सः शये**=वह इसमें ममत्वपूर्वक निवास करता है। **यः चकार**=जो परमात्मा इस नगरी को बनाता है, **सः जजार**=वह स्तुति के योग्य होता है (जॄ स्तुतौ)। इस शरीर की रचना में-अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना के कौशल में उस प्रभु की महिमा का अनुभव करता हुआ स्तोता उस प्रभु का स्तवन करता है।

भावार्थ—शरीर में आत्मा व परमात्मा दोनों का निवास है। आत्मा इसमें रहता हुआ कर्मफल भोगता है। इसका निर्माता प्रभु स्तुति का विषय बनता है।

ऋषिः—**कुत्सः** ॥ देवता—**अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**भुरिग्बृहती** ॥

विविधरूपों में

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥ २७॥

१. हे जीवात्मन्! **त्वम्**=तू इस शरीर-गृह में निवास करता हुआ **स्त्री**=स्त्री होता है, **त्वं पुमान् असि**=तू ही पुमान् होता है। **त्वं कुमारः**=तू कुमार होता है, **उत वा**=अथवा **कुमारी**=कुमारी के रूप में होता है। इसप्रकार कभी नर व कभी मादा के रूप में जन्म लेता है। २. **त्वम्**=तू ही **जीर्णः**=जीर्णशक्तिवाला होकर **दण्डेन वञ्चसि**=दण्ड के सहारे गतिवाला होता है। **त्वम्**=तू **जातः**=उत्पन्न हुआ-हुआ-शरीर को धारण किये हुए—**विश्वतोमुखः भवसि**=सब ओर मुखवाला

होता है। बहिर्मुखी इन्द्रियों से चारों ओर दूर-दूर तक देखनेवाला व विषयों को भोगनेवाला बनता है।

भावार्थ—जीव शरीर में निवास करता हुआ 'पुरुष, स्त्री, कुमार व वृद्ध' के रूपों में होता है। शरीर में रहता हुआ यह चारों ओर दूर-दूर तक देखनेवाला व विषयों का उपभोग करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पिता उत पुत्रः, ज्येष्ठः उत वा कनिष्ठः

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥ २८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार शरीर धारण करनेवाला यह जीवात्मा **उत एषां पिता**=इन सन्तानों का कभी तो पिता बनता है, **उत वा**=और निश्चय से **एषाम्**=इन अपने माता-पिताओं का **पुत्रः**=पुत्र होता है। **उत एषां ज्येष्ठः**=कभी तो भाइयों में बड़ा होता है, **उत वा**=अथवा कभी **कनिष्ठः**=छोटा होता है। २. **ह**=निश्चय से **एकः देवः**=वह अद्वितीय प्रकाशमय प्रभु **मनसि प्रविष्टः**=हमारे हृदयों में स्थित है। **प्रथमः जातः**=वह सृष्टि बनने से पहले ही प्रादुर्भूत हुआ-हुआ है **ऊ**=और वर्त्तमान में **सः**=वे प्रभु ही **गर्भे अन्तः**=सब लोक-लोकान्तरों व प्राणियों में प्रविष्ट होकर रह रहे हैं—अन्दर स्थित हुए-हुए सबका नियमन कर रहे हैं।

भावार्थ—जीव शरीर में प्रविष्ट होकर कभी पिता है तो कभी पुत्र, कभी ज्येष्ठ है तो कभी कनिष्ठ, परन्तु वे अद्वितीय प्रभु पहले से ही प्रादुर्भूत हैं और वर्त्तमान में वे प्रभु ही सबके अन्दर स्थित होते हुए सब लोक-लोकान्तरों का नियमन कर रहे हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पूर्ण प्रभु से पूर्ण सृष्टि का निर्माण

पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते। उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते॥ २९॥

१. प्रभु पूर्ण हैं—पूर्ण ज्ञानी व पूर्ण शक्तिमान्। उन **पूर्णात्**=पूर्ण प्रभु से **पूर्णम् उदचति**=यह पूर्ण जगत् उद्गत होता है और वह **पूर्णम्**=न्यूनतारहित जगत् **पूर्णेन सिच्यते**=पूर्ण प्रभु के द्वारा सिक्त किया जाता है। '**मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्**'=महद् ब्रह्म (महत्तत्व को जन्म देनेवाली प्रकृति) प्रभु की योनि है, उसमें प्रभु गर्भ की स्थापना करते हैं। इसी से यह संसार उत्पन्न होता है। २. **उतो**=और निश्चय से **अद्य**=आज हम **तद् विद्याम**=उस प्रभु को जानें **यतः**=जिसके द्वारा **तत्**=वह महद् ब्रह्म **परिषिच्यते**=सिक्त किया जाता है। प्रभु इस संसार के पिता हैं, प्रकृति माता है। प्रभु द्वारा सिक्तवीर्या यह प्रकृति ब्रह्माण्ड को जन्म देती है। 'जन्माद्यस्य यतः' यही तो प्रभु का लक्षण है कि इस जगत् का जन्म आदि जिससे होता है, वे ही प्रभु हैं।

भावार्थ—प्रभु पूर्ण हैं, अतः उनका बनाया यह जगत् भी पूर्ण है। प्रकृति में गर्भ धारण करके ब्रह्माण्ड को जन्म देनेवाले प्रभु को हम जानें।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

सनत्नी-पुराणी

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
महीं देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे॥ ३०॥

१. **एषा**=यह प्रभु-शक्ति **सनत्नी**=(सन् संभक्तौ, नी) सम्भजनशील पुरुषों का प्रणयन (आगे ले-चलना) करनेवाली **सनम् एव जाता**=सदा से ही प्रसिद्ध है। **एषा पुराणी**=यह सनातन काल से चली आ रही शक्ति **सर्वं परिबभूव**=सबको व्याप्त किये हुए है। २. **सा मही**=वह महनीय (पूजनीय) **देवी**= प्रकाशमयी शक्ति **उषसः**=उषाकालों को **विभाती**=प्रकाशित करती हुई **एकेन एकेन मिषता**=प्रत्येक निमेषोन्मेषवाले प्राणी के द्वारा **विचष्टे**=देखती है। सब प्राणियों को दर्शन आदि की शक्ति प्राप्त करानेवाली वह 'सनत्नी पुराणी' शक्ति ही है।

भावार्थ—प्रभु-शक्ति ही भक्तों का प्रणयन करनेवाली है, यही सबमें व्याप्त हो रही है। यही उषाकालों को प्रकाशित करती है—यही सब प्राणियों को दर्शनादि की शक्ति देती है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अवि

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥ ३१॥

१. वे प्रभु **वै**=निश्चय से **अविः नाम देवता**=(अव रक्षणे) 'रक्षक' इस नामवाली देवता हैं। प्रभु सबके रक्षक हैं, अतः उनका नाम 'अवि' है। ये प्रभु **ऋतेन परीवृता आस्ते**=ऋत से परिवृत हुए-हुए विद्यमान हैं। प्रभु में अनृत सम्भव नहीं। वे सत्यस्वरूप हैं—सत्य ही हैं। २. **तस्याः**=उस ऋत से परिवृत 'अवि' नामवाली देवता के **रूपेण**=सौन्दर्य, प्रकाश (Beauty, elegance, grace) से **इमे वृक्षाः**=ये वृक्ष **हरिताः**=हरे-भरे हैं और **हरितस्रजः**=हरे-भरे पत्तों की मालाओंवाले हैं। वृक्षों को पत्तों द्वारा सौन्दर्य वे प्रभु ही प्राप्त करा रहे हैं।

भावार्थ—प्रभु सबके रक्षक और सत्यस्वरूप हैं। उसी की कृपा से ये वृक्ष हरे-भरे हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु का अजरामर काव्य

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ ३२॥

१. **अन्ति सन्तम्**=समीप होते हुए उस प्रभु को **न जहाति**=जीव कभी छोड़ नहीं पाता—प्रभु से दूर होना उसके लिए सम्भव नहीं, साथ ही **अन्ति सन्तम्**=समीप होते हुए उस प्रभु को **न पश्यति**=यह देखता भी नहीं। प्रभु से दूर होना भी सम्भव नहीं और समीप होते हुए भी उसका देखना सम्भव नहीं। २. हे जीव! तू **देवस्य**=उस प्रकाशमय प्रभु के **काव्यम्**=इस वेदज्ञानरूप काव्य को **पश्य**=देख। यह ज्ञान **न ममार**=न विनष्ट होता है, **न जीर्यति**=न ही जीर्ण होता है। यह ज्ञान सनातन होता हुआ भी सदा नवीन है। यह कभी किसी समय में अनुपयुक्त out of date नहीं होता।

भावार्थ—प्रभु हमारे समीप हैं, परन्तु हम प्रभु को देख नहीं पाते। प्रभु का यह वेदरूप काव्य अजरामर है। हम इस काव्य को देखने का व्रत लें।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदों का अन्तिम प्रतिपाद्य विषय 'महद् ब्रह्म'

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥ ३३॥

१. **अपूर्वेण**=उस अपूर्व—कारणरहित प्रभु से (सदा से विद्यमान प्रभु से) **वाचः इषिताः**=ये

वेदवाणियाँ प्रेरित की गई हैं। प्रभु ने इन्हें 'अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिराः' नामक ऋषियों के हृदयों में स्थापित किया है। **ताः**=वे वेदवाणियाँ **यथायथं वदन्ति**=सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान देती हैं—सब पदार्थों का ठीक-ठाक प्रतिपादन करती हैं। २. **वदन्तीः**=सब पदार्थों का ज्ञान देती हुई ये वेदवाणियाँ **यत्र गच्छन्ति**=अन्ततः जहाँ ये पहुँचती हैं **तत्**=उसी को **महत् ब्राह्मणं आहुः**=महान् ब्राह्मण—महनीय ज्ञानी—ज्ञानस्वरूप प्रभु कहते हैं, अर्थात् इन वाणियों का अन्तिम प्रतिपाद्य विषय वे प्रभु ही हैं। '**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**' तथा '**ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्**'। सब ऋचाएँ अन्ततः प्रभु का ही प्रतिपादन करती हैं।

भावार्थ—अपूर्व प्रभु से प्रेरित ये वेदवाणियाँ सत्यज्ञान देती हुई अन्ततः प्रभु में विश्रान्त होती हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अपां पुष्पम्

यत्र॑ दे॒वाश्च॑ मनु॒ष्या॑ ऽश्चा॒रा नाभा॑विव श्रि॒ताः।
अ॒पां त्वा॒ पुष्पं॑ पृच्छामि॒ यत्र॒ तन्मा॒यया॑ हि॒तम्॥ ३४॥

१. **यत्र**=जिस प्रभु में **देवाः च मनुष्याः च**=देव और मनुष्य **श्रिताः**=उस प्रकार आश्रित हैं, **इव**=जैसे **नाभौ अराः**=नाभि में आरे प्रतिष्ठित होते हैं। मैं उस **अपां पुष्पम्**=(आपो नारा इति प्रोक्ताः) नर-समूहों का पोषण करनेवाले प्रभु को **त्वा पृच्छामि**=तुझसे पूछता हूँ (शिष्य के नाते आचार्य से पूछता हूँ)। उस प्रभु को पूछता हूँ, **यत्र**=जिनमें **मायया हितम्**=प्रकृति से धारण किया गया **तत्**=वह संसार आश्रित है।

भावार्थ—प्रभु में ही सब देव व मनुष्य आश्रित हैं। वे ही नर-समूहों का पोषण करनेवाले हैं। प्रभु में ही यह माया से धारण किया गया संसार आश्रित है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु की दिव्य शक्तियाँ

येभि॒र्वात॑ इषि॒तः प्र॒वाति॒ ये दद॑न्ते॒ पञ्च॒ दिशः॑ स॒धीचीः॑।
य आहु॑तिम॒त्यम॑न्यन्त दे॒वा अ॒पां ने॒तारः॑ कत॒मे त आ॑सन्॥ ३५॥

१. **येभिः**=जिन देवों से (प्रभु की दिव्य शक्तियों से) **इषितः**=प्रेरित हुआ-हुआ **वातः प्रवाति**=वायु बहता है। **ये**=जो देव **सधीचीः**=साथ मिली हुई **पञ्च**=विस्तृत (पची विस्तारे) **दिशः**=दिशाओं को **ददन्ते**=हमारे लिए प्राप्त कराते हैं, **ये देवाः**=जो देव **आहुतिम्**=यज्ञ में डाली गई आहुति को **अति अमन्यन्त**=अतिशयेन आदृत करते हैं, **ते**=वे **अपां नेतारः**=प्रजाओं का प्रणयन करने-(आगे ले-चलने)-वाले **कतमे आसन्**=कौन-से हैं?

भावार्थ—प्रभु की दिव्य शक्तियाँ ही जीवनभूत वायु को बहाती हैं, वे ही हमारे लिए इन विस्तृत दिशाओं को प्राप्त कराती हैं तथा हमसे यज्ञों में प्रेरित आहुति को आदृत करती हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अग्नि, वायु, सूर्य'

इ॒मामे॑षां पृथि॒वीं वस्त॒ एको॑ ऽन्तरि॑क्षं॒ पर्ये॑को॑ बभूव।
दिव॑मेषां ददते॒ यो वि॑धर्ता॒ विश्वा॒ आशाः॒ प्रति॑ रक्षन्त्येके॑॥ ३६॥

१. **एषां एकः**=इन देवों में से एक 'अग्नि' नामक देव **इमां पृथिवीं वस्ते**=इस पृथिवी को आच्छादित करता है। **एकः**=एक 'वायु' नामक देव **अन्तरिक्षं परि बभूव**=अन्तरिक्ष को

व्याप्त कर रहा है। **एषाम्**=इनमें से एक 'सूर्य' नामक देव **दिवं ददते**=द्युलोक को धारण करता है (दधते), वह सूर्य **यः**=जोकि **विधर्ता**=सब प्रजाओं का धारण करनेवाला है—'**प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः**'। **एके**=कई चन्द्र-नक्षत्रादि देव **विश्वाः आशाः प्रतिरक्षन्ति**=सब दिशाओं का रक्षण कर रहे हैं। वे देव ही इन सब पिण्डों के अधिष्ठातृदेव कहलाते हैं। इन सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले वे सर्वमहान् देव ही प्रभु हैं, ब्रह्म हैं।

भावार्थ—'अग्नि' देव पृथिवी का धारण करता है, तो वायुदेव अन्तरिक्ष में व्याप्त हो रहा है। सूर्य द्युलोक का अधिष्ठातृदेव है और यह सब प्राणियों का धारण कर रहा है। इनके अतिरिक्त चन्द्र-नक्षत्रादि देव सब दिशाओं के रक्षण का निमित्त बन रहे हैं। इन सब देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले प्रभु की महिमा को हम इन सब देवों में देखने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सूत्रस्य सूत्रम्

यो वि॒द्यात्सू॒त्रं वित॑तं॒ यस्मि॒न्नोता॑: प्र॒जा इ॒माः।
सूत्रं॑ सू॒त्रस्य॒ यो वि॒द्यात्स वि॑द्या॒द् ब्राह्म॑णं म॒हत्॥ ३७॥
वेदा॒हं सू॒त्रं वित॑तं॒ यस्मि॒न्नोता॑: प्र॒जा इ॒माः।
सूत्रं॑ सू॒त्रस्या॒हं वे॒दाथो॒ यद् ब्राह्म॑णं म॒हत्॥ ३८॥

१. **यः**=जो उस **वितनं सूत्रम्**=फैले हुए सूत्र को **विद्यात्**=जानता है, **यस्मिन्**=जिसमें कि **इमाः प्रजाः**=ये सब प्रजाएँ **ओताः**=ओत-प्रोत हैं। उस **सूत्रस्य सूत्रम्**=सूत्र के भी सूत्र को—सर्वोपरि सूत्र को—**यः विद्यात्**=जो जानता है, **सः**=वह **महत् ब्राह्मणं विद्यात्**=उस महान् ज्ञानस्वरूप प्रभु को जानता है। वे ब्रह्म ही तो वह सूत्र हैं जिसमें कि सब लोक-लोकान्तर ग्रथित हुए-हुए हैं। २. **अहम्**=मैं उस **वितनं सूत्रम्**=फैले हुए सूत्र को **वेद**=जानता हूँ, **यस्मिन्**=जिसमें कि **इमाः प्रजाः ओताः**=ये सब प्रजाएँ ओत-प्रोत हैं। **अथो**=और अब **अहम्**=मैं **सूत्रस्य सूत्रं वेद**=सूत्र के सूत्र को—सर्वोपरि सूत्र को जानता हूँ **यत्**=जोकि **महत् ब्राह्मणम्**=महनीय ज्ञानस्वरूप ब्रह्म हैं।

भावार्थ—प्रभु वे सूत्र हैं, जिनमें कि ये सब लोक-लोकान्तररूप पिण्ड पिरोये हुए हैं। '**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव**' ऐसा गीता में कहा है। यजुः० ३२.१२ में भी कहते हैं कि '**ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्**' वे प्रभु 'ऋत के फैले हुए तन्तु' ही हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्**॥

'प्रदहन् विश्वदाव्यः' अग्निः

यद॑न्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी अ॒ग्निरैत्प्र॒दह॑न्विश्वदा॒व्य ऽ॑:।
यत्रा॑ति॒ष्ठ॒न्नेक॑पत्नीः प॒रस्ता॒त्क्वे ऽ वासीन्मात॒रिश्वा॑ त॒दानी॑म्॥ ३९॥

१. **यत्**=जब **द्यावापृथिवी अन्तरा**=द्युलोक व पृथिवीलोक के बीच में **प्रदहन्**=प्रकर्षेण सबको भस्म करता हुआ **विश्वदाव्यः**=(दु उपतापे) सम्पूर्ण संसार को उपतप्त करनेवाला **अग्निः ऐत्**=अग्नि गतिवाला होता है। **यत्र**=जहाँ **परस्तात्**=दूर तक ये दिशाएँ **एकपत्नीः अतिष्ठन्**=एक अग्निरूप पतिवाली होकर ही स्थित थीं, अर्थात् जब चारों ओर अग्नि-ही-अग्नि का राज्य था, **तदानीम्**=उस समय **मातरिश्वा**=वायु व सूत्रात्मा **क्व इव आसीत्**=कहाँ ही था? निश्चय से इसकी स्थिति कहाँ थी? चारों ओर अग्नि-ही-अग्नि थी, क्या उस समय इस अग्नि में ही इस

मातरिश्वा की स्थिति थी? २. वस्तुतः अग्नि का भी अधिष्ठाता वह सूत्रात्मा ही तो है। अग्नि में हमारे पार्थिव शरीर न रह पाएँगे, परन्तु आत्मतत्त्व उसमें थोड़े ही जल जाता है?

भावार्थ—प्रलयकाल में चारों ओर अग्नि-ही-अग्नि होकर सब भस्म हो जाता है। उस समय इसका अधिष्ठाता वह सूत्रात्मा ही है, जोकि अवशिष्ट रहता है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'बृहन् पवमानः' प्रभु

अप्स्वा॑सीन्मात॒रिश्वा॒ प्रवि॑ष्टः॒ प्रवि॑ष्टा दे॒वाः स॑लि॒लान्या॑सन्।
बृ॒हन्ह॑ तस्थौ॒ रज॑सो वि॒मान॒ः पव॑मानो॒ ह॒रित॒ आ वि॑वेश॥ ४०॥

१. प्रलय के समय सब कार्यजगत् नष्ट होकर कारणरूप में चला जाता है, यह कारणरूप प्रकृति ही 'आपः' कहलाती है—सर्वत्र एक समान (साम्यावस्था) फैला हुआ तत्त्व। यही 'सलिल' कहलाती है (सत् लीनम् अस्मिन्)—जिसमें यह सब दृश्य (सत्) जगत् लीन हो जाता है। **मातरिश्वा**=वह सूत्रात्मा **अप्सु**=इस एक-समान फैले हुए परमाणुरूप प्रकृतितत्त्व में **प्रविष्टः आसीत्**=प्रविष्ट हुआ-हुआ था। **देवाः**=सूर्य आदि सब देव भी **सलिलानि**=इन सलिलों में ही—कारणभूत परमाणुओं में ही **प्रविष्टाः आसन्**=प्रविष्ट हुए-हुए थे। २. उस समय **ह**=निश्चय से **बृहन्**=महान् प्रभु **ह**=ही **रजसः विमानः**=सब लोकों का वि-मान—कारणरूप में अलग-अलग करनेवाला-(निर्माण से विपरीत विमान करनेवाला) **तस्थौ**=स्थित था। यह **पवमानः**=पवित्रीकरणवाला (सब ब्रह्माण्ड का सफ़ाया कर देनेवाला) प्रभु **हरितः**=सब दिशाओं में **आविवेश**=प्रविष्ट हो रहा था। उस समय चारों ओर प्रभु-ही-प्रभु थे—अन्य कोई सत्ता प्रतीत न होती थी।

भावार्थ—प्रलय के समय प्रभु कारणरूप व्यापक परमाणुओं में प्रविष्ट थे। सूर्यादि ये सब देव भी कारणरूप परमाणुओं में चले गये थे। एक प्रभु ही इस ब्रह्माण्ड का विमान (Dismantling) करते हुए स्थित थे। वे सफ़ाया कर देनेवाले प्रभु ही सब ओर विद्यमान थे।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गायत्री-अमृत-साम

उत्त॑रेणेव गाय॒त्रीम॒मृते॑ऽधि॒ वि च॑क्रमे।
साम्ना॒ ये साम॑ संवि॒दुर॒जस्तद्दृ॑दृ॒शे क्व ऽ॥ ४१॥

१. जीवन का 'प्रातःसवन' (प्रथम चौबीस वर्ष) गायत्र कहलाता है **'गायत्र वै प्रातःसवनम्'**—ऐत० ६।२। इस सवन में मुख्य कार्य यही है कि (गयाः प्राणाः तान् तत्रे) प्राणशक्ति का रक्षण किया जाए। यह रक्षण ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। इस **गायत्रीं उत्तरेण इव**=प्राणशक्ति के रक्षणवाले प्रातःसवन के बाद ही **अमृते**=(अमृतम् इव हि स्वर्गो लोकः—तै० १.३.७.५) स्वर्गलोक में **अधिविचक्रमे**= अधिष्ठातृरूपेण विचरणवाला होता है। ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ ही स्वर्गलोक है। ब्रह्मचर्याश्रम में प्राणशक्ति के रक्षण का यह परिणाम होता है कि गृहस्थ स्वर्ग-सा बनता है। नीरोग गृहस्थ ही स्वर्ग है। २. गृहस्थ ही माध्यन्दिन सवन है। इसकी समाप्ति पर वानप्रस्थ व संन्यास ही सायन्तन सवन हैं। यहाँ **साम्ना**=उस पुरुष की उपासना के द्वारा (तमेतम्पुरुषं सामेति छन्दोगा उपासते, एतस्मिन् हीदꣳ सर्वꣳ समानम्—श० १०।५।२।२०) **ये**=जो **साम**=क्षत्र (बल) व साम्राज्य को (क्षत्रं वै साम-श० १२।८।३।२३ साम्राज्यं वै साम) **संविदुः**=सम्यक् जानते व प्राप्त करते हैं, अर्थात् जो प्रभु-उपासन के द्वारा शक्ति-सम्पन्न बनते हैं और इन्द्रियों के पूर्ण शासक (सम्राट्) बनते हैं, **तत्**=तब यह **अजः**=जन्म न लेनेवाला जीव

क्व ददृशे=कहाँ दीखता है? अर्थात् यह इस देह के छूट जाने पर मुक्त हो जाता है और प्रभु के साथ विचरता है। इस शरीर में न आने से वह आँखों का विषय नहीं बनता।

भावार्थ—हम जीवन के प्रातःसवन में प्राणशक्ति का (वीर्य का) पूर्ण रक्षण करते हुए 'गायत्री' के उपासक बनें तभी गृहस्थ में नीरोग रहते हुए हम इसे 'अमृत' बना पाएँगे और अन्ततः प्रभु के साथ मेल से हम शक्ति व इन्द्रियों के साम्राज्य (शासकत्व) को प्राप्त करके प्रभु के साथ विचरनेवाले बनेंगे—मुक्त हो जाएँगे। उस समय शरीर में न आने से हम दीखेंगे नहीं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**(त्रिपदा) विराड्गायत्री**॥

निवेशनः—सत्यधर्मा

निवेशनः संगमनो वसूनां देवइव सविता सत्यधर्मा।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम्॥ ४२॥

१. गत मन्त्र में वर्णित साधक **निवेशनः**=सबको उत्तम निवेश प्राप्त करानेवाला—सबका आश्रय बनता है। **वसूनां संगमनः**=निवास के लिए आवश्यक धनों का अपने में मेल करनेवाला होता है। यह **सविता देवः इव**=उस प्रेरक प्रकाशमय प्रभु की भाँति होता है—सदा सबको उत्तम प्रेरणा देनेवाला होता है, **सत्यधर्मा**=सत्य को धारण करता है। २. **धनानाम्**=सब धनों का **समरे**=(सम्+अर=ऋ गतौ) संगमन होने पर **इन्द्रः न**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की भाँति **तस्थौ**=स्थित होता है।

भावार्थ—प्रभु का उपासक सबका आश्रय, धनों का आधार, उत्तम प्रेरणा देनेवाला, सत्य का धारण करनेवाला बनता है। ऐश्वर्यों का संगमन होने पर यह परमैश्वर्यशाली प्रभु का ही छोटा रूप प्रतीत होने लगता है।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पुण्डरीकं नवद्वारम्

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ४३॥

१. **पुण्डरीकम्**=(पुण कर्मणि शुभे) पुण्य कर्म करने का साधनभूत (धर्मैकहेतुम्) **नवद्वारम्**=नौ इन्द्रिय द्वारोंवाला, **त्रिभिः गुणेभिः आवृतम्**='सत्त्व, रजस्, तमस्' नामक तीन गुणों से आवृत्त (आच्छादित) यह शरीर है। **तस्मिन्**=इस शरीर में **यत्**=जो **आत्मन्वत्**=आत्मावाला, अर्थात् जीवात्मा का भी अधिष्ठाता **यक्षम्**=पूजनीय देव है, **तत्**=उस यक्ष को **वै**=निश्चय से **ब्रह्मविदः विदुः**=ब्रह्मज्ञानी ही जान पाते हैं—उस यक्ष को जाननेवाले ही तो ये ब्रह्मज्ञानी हैं।

भावार्थ—यह नव इन्द्रिय-द्वारोंवाला व सत्त्व, रज, तमरूप गुणों से आवृत्त शरीर पुण्य कर्म करने के लिए दिया गया है। इस शरीर में ही आत्मा का अधिष्ठाता वह पूज्य प्रभु भी स्थित है। ब्रह्मज्ञानी उसे ही जानने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषिः—**कुत्सः**॥ देवता—**अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अजर-धीर-युवा' प्रभु

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ ४४॥

१. ब्रह्मज्ञानी उस प्रभु को इस रूप में जानता है कि वे प्रभु **अकामः**=सब प्रकार की कामनाओं से रहित हैं। वे **धीरः**=(धिया ईर्ते) बुद्धिपूर्वक गतिवाले हैं—उनकी सब कृतियाँ

बुद्धिपूर्वक होने से पूर्ण हैं। वे **अमृतः**=अविनाशी हैं, **स्वयम्भूः**=सदा से स्वयं होनेवाले हैं—उनका कोई कारण नहीं है—वे कारणों के भी कारण हैं। **रसेन तृप्तः**=वे रस से तृप्त हैं—रसरूप हैं 'रसो वै सः'। **कुतश्चन ऊनः न**=किसी भी दृष्टिकोण से न्यून नहीं हैं—वे पूर्ण-ही-पूर्ण हैं। २. **तम्**=उन **धीरम्**=बुद्धिपूर्वक गतिवाले **अजरम्**=कभी जीर्ण न होनेवाले **युवानम्**=नित्य तरुण अथवा बुराइयों का अमिश्रण व अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाले **आत्मानम्**=परमात्मा को **विद्वान् एव**=जानता हुआ ही पुरुष **मृत्योः न बिभाय**=मृत्यु से भयभीत नहीं होता—वह जन्ममरण के चक्र से मुक्त होकर मोक्षलाभ करता है।

भावार्थ—वे प्रभु 'अकाम, धीर, अमृत, स्वयम्भू, अजर व युवा' हैं। रस से तृप्त व न्यूनता से रहित हैं। उन प्रभु को जानकर मनुष्य मृत्यु-मुख से मुक्त हो जाता है। यह भी 'अकाम, धीर, अजर व युवा' बनने का यत्न करता है।

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'शतौदना' वेदवाणी

अघायतामपिनह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः॥ १॥

१. इस सूक्त में वेदवाणी को ही 'शतौदना' कहा है—यह शतवर्षपर्यन्त हमारे जीवनों को सुख से सिक्त करती है (उन्दी क्लेदने)। इस वेदवाणी को प्राप्त करनेवाला 'अथर्वा'=स्थिर वृत्तिवाला (न थर्व) पुरुष है। यह अथर्वा ही इस सूक्त का ऋषि है। वह वेदवाणी को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि **अघायताम्**=पाप की कामनावालों के—दूसरों का अशुभ चाहनेवालों के—**मुखानि अपिनह्य**=मुखों को बाँध दे तथा **सपत्नेषु**=शत्रुओं पर **एतं वज्रं अर्पय**=इस वज्र को अर्पित कर, अर्थात् तेरे अध्ययन से न तो मनुष्य औरों का अशुभ चाहने की वृत्तिवाला होता है और न ही काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं का शिकार होता है। २. यह वेदवाणी **इन्द्रेण दत्ता**=उस शत्रुविद्रावक परमैश्वर्यशाली प्रभु से दी गई है। **प्रथमा**=तू (प्रथ विस्तारे) अधिक-से-अधिक शक्तियों के विस्तारवाली है। **शतौदना**=शतवर्षपर्यन्त हमें शक्ति से सिक्त करनेवाली है। **भ्रातृव्यघ्नी**=शत्रुओं को नष्ट करनेवाली है। यह वेदवाणी **यजमानस्य गातुः**=यज्ञशील पुरुष की मार्गदर्शिका है। यज्ञों का प्रतिपादन करती हुई यह वेदवाणी अपने अध्येता को यज्ञों में प्रवृत्त करती है।

भावार्थ—वेदवाणी हमें किसी की भी अशुभकामना से रोकती है, यह हमारे रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करती है। प्रभु इसे सृष्टि के प्रारम्भ में हमारे लिए देते हैं। यह हमारी शक्तियों का विस्तार करती हुई शतवर्षपर्यन्त हमें सुखों से सिक्त करती है। काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञिया वेदवाणी (वेदधेनु)

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु॥ २॥
बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वध्न्ये।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने॥ ३॥

१. वेदवाणी को धेनु के रूप में चित्रित करते हुए कहते हैं कि **ते चर्म**=तेरा चर्म **वेदिः भवतु**=यज्ञ की वेदि बने। **यानि ते लोमानि**=जो तेरे लोम हैं, वे **बर्हिः**=कुशासन हैं। **एषा**=यह जो **रशनाम्**=रज्जु **त्वा अग्रभीत्**=तुझे ग्रहण करती है—बाँधती है, यह **ग्रावा**=स्तत्रों का उच्चारण करनेवाला स्तोता है। **एषः**=यह स्तोता **त्वा अधिनृत्यतु**=तुझपर नृत्य करनेवाला हो। वेदाध्ययन ही इसका यज्ञ है—इस यज्ञ में वह आनन्द लेनेवाला हो। २. हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदधेनो! **ते बालाः**=तेरे बाल **प्रोक्षणीः सन्तु**=यज्ञवेदि के शोधन-जल हों। **जिह्वा**=तेरी जिह्वा **संमार्ष्टु**=सम्यक् शोधन करनेवाली हो। हे **शतौदने**=शतवर्षपर्यन्त हमारे जीवन को सुखों से सींचनेवाली वेदवाणि! **त्वम्**=तू **शुद्धा**=शुद्ध व **यज्ञिया भूत्वा**=यज्ञ के योग्य व यज्ञशीला होकर **दिवं प्रेहि**=प्रकाशमय स्वर्गलोक को प्राप्त कर। वेदाध्ययन करनेवाला पुरुष अपने जीवन को शुद्ध व यज्ञशील बनाकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

भावार्थ—वेदाध्ययन को यज्ञ ही समझना चाहिए। इसमें कभी विच्छेद न करते हुए हम अपने जीवनों को शुद्ध व यज्ञिय बनाकर अपने घरों को स्वर्गोपम बनाने में समर्थ हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कामप्रेण स कल्पते

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।
प्रीता ह्य ऽस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम्॥ ४॥

१. **यः**=जो **शतौदनाम्**=शतवर्षपर्यन्त जीवन को सुखों से सिक्त करनेवाली वेदवाणी को **पचति**= परिपक्व करता है, अर्थात् वेदवाणी से अपने ज्ञान को परिपक्व करता है, तो **सः**=वह **कामप्रेण**=(प्रा पूरणे) कामनाओं को पूर्ण करनेवाले व्यवहार से **कल्पते**=समर्थ होता है। ज्ञान के परिपाक से इसके कार्यों में इसे सफलता प्राप्त होती है। २. **अस्य**=इस परिपक्व ज्ञानवाले व्यक्ति के प्रति **हि**=निश्चय से **ऋत्विजः**=सब यज्ञ करनेवाले ऋत्विज् **प्रीताः**=प्रसन्न व प्रीतिवाले होते हैं। इसे **सर्वे**=सब ऋत्विज् **यथायथम्**=ठीक-ठाक **यन्ति**=प्राप्त होते हैं। यह ऋत्विजों का प्रिय व प्राप्य होता है।

भावार्थ—जो इस शतौदना (शतवर्षपर्यन्त जीवन को आनन्दसिक्त करनेवाली) वेदवाणी का अपने में पचन करता है, वह सफल मनोरथ होता है और यज्ञशील पुरुषों के साथ उसका मेल होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अपूपनाभिं कृत्वा

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः। अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्॥ ५॥

१. **यः**=जो **अपूपनाभिं कृत्वा**=(इन्द्रियम् अपूपः—ऐ० २।१४, णह बन्धने) इन्द्रियों को बाँधकर (देशबन्धः चित्तस्य धारणा)—इन्द्रियों व मन को हृदयदेश में बाँधकर—**शतौदनाम्**=इस शतवर्षपर्यन्त आनन्दसिक्त करनेवाली वेदवाणी को **ददाति**=औरों के लिए प्राप्त कराता है, अर्थात् जो स्वाध्याय-प्रवचन को ही अपना ध्येय बना लेता है, **सः**=वह उस **स्वर्गं आरोहति**=स्वर्ग में आरोहण करता है, **यत्र**=जहाँ कि **दिवः**=ज्ञान की ज्योति से **अदः त्रिदिवम्**=वे 'शरीर, हृदय व मस्तिष्क' (पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक) तीनों ही प्रकाशमय—तेजोदीप्त—हैं।

भावार्थ—'स्वाध्याय और प्रवचन'—मनुष्यों को सब प्रकार की आसक्तियों से ऊपर उठाकर इन्हें 'तेजस्वी शरीर, पवित्र हृदय व दीप्त मस्तिष्क' वाला बनाता है, अतः हमें जितेन्द्रिय बनकर स्वाध्याय-प्रवचन को ही अपना मुख्य कार्य बनाना चाहिए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्॥ ६॥

१. **यः हिरण्यज्योतिषं कृत्वा**=जो हितरमणीय ज्योति (वेदज्ञान) का सम्पादन करके—इस ज्योति को आचार्यकुल में प्राप्त करके—इस **शतौदनाम् ददाति**=शतवर्षपर्यन्त जीवन को आनन्द से सिक्त करनेवाली वेदवाणी को औरों के लिए देता है—प्रवचन द्वारा औरों के लिए इसका ज्ञान प्राप्त कराता है। **सः**=वह **तान्**=उन सब **लोकान् समाप्नोति**=लोकों को सम्यक् प्राप्त करता है, ये **दिव्याः**=जो दिव्य हैं **ये च**=और जो **पार्थिवाः**=पार्थिव हैं। हृदयान्तरिक्ष व मस्तिष्क ही दिव्यलोक हैं तथा शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही पार्थिवलोक हैं। इन सबको वह 'तेजस्विता, पवित्रता व दीप्ति' वाला बनाने में सफल होता है।

भावार्थ—इस 'हितरमणीय ज्योतिवाली, जीवन को सदा आनन्दसिक्त करनेवाली' वेदवाणी का स्वाध्याय-प्रवचन हमें दीप्त 'दिव्य व पार्थिव' लोकोंवाला बनाता है—इससे हमारा शरीर तेजस्वी, मन ओजस्वी व मस्तिष्क ज्योतिर्मय बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शमितारः+पक्तारः

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने॥ ७॥

१. हे **देवि**=प्रकाशमयी शतौदने वेदवाणि! **ये ते शमितारः**=(शम् आलोचने) जो नियमपूर्वक तेरा आलोचन करनेवाले—ज्ञान प्राप्त करनेवाले पुरुष हैं, **च**=और **ये जनाः**=जो मनुष्य **ते पक्तारः**=अपने में तेरा परिपाक करनेवाले आचार्य (भृगु) हैं, **ते सर्वे**=वे सब शिष्य और आचार्य **त्वा**=तेरा **गोप्स्यन्ति**=रक्षण करेंगे। हे **शतौदने**=शतवर्षपर्यन्त जीवन को आनन्दसिक्त करनेवाली वेदवाणि! तू **एभ्यः मा भैषीः**=इनसे भयभीत न हो। इनके होते हुए तेरे विनाश (विलोप) का किसी प्रकार भी भय नहीं।

भावार्थ—जब आचार्यकुल में रहते हुए विद्यार्थी, परिपक्व ज्ञानवाले आचार्यों से इस वेदज्ञान का ग्रहण करते हुए इसका आलोचन करते हैं तब इस वेदज्ञान के शमन (आलोचन) व पचन से इसके विलोप का भय नहीं होता।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्निष्टोमम् अतिद्रव

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।
आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव॥ ८॥

१. शतौदना वशा—शतवर्षपर्यन्त ज्ञानदुग्ध से हमारा सेचन करनेवाली वेदधेनु से कहते हैं कि **वसवः**=वसु ब्रह्मचारी—प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करनेवाले—Natural science का अध्ययन करनेवाले ये ब्रह्मचारी **दक्षिणतः**=दक्षिण की ओर से **त्वा गोप्स्यन्ति**=तेरा रक्षण करेंगे। **उत्तरात्**=उत्तर से **मरुतः**=(मितराविणः=महद् द्रवन्ति—नि० ११।१३) मपा-तुला बोलनेवाले, खूब क्रियाशील व्यक्ति **त्वा** (गोप्स्यन्ति)=तुझे रक्षित करेंगे तथा **आदित्याः**=प्रकृति, जीव व परमात्मा के ज्ञान का आदान करनेवाले आदित्य ब्रह्मचारी **पश्चात्**=पीछे से—पश्चिम से तेरा रक्षण करेंगे।

इसप्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर से रक्षित हुई-हुई **सा**=वह तू **अग्निष्टोमम्**=(अग्नेः स्तोमो यस्य) उस प्रभु का स्तवन करनेवाले की ओर **अतिद्रव**=अतिशयेन गतिवाली हो।

भावार्थ—इस वेदधेनु को वसु, मरुत् व आदित्य रक्षित कर रहे हैं। इनसे रक्षित हुई-हुई यह वेदधेनु प्रभु के स्तोता को अतिशयेन प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अतिरात्रम् अतिद्रव

देवाः पितरो मनुष्या ∫ गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव॥ ९॥

१. **देवाः**=काम, क्रोध आदि आसुरभावों को जीतने की कामनावाले, **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग, **मनुष्याः**=विचारपूर्वक कार्यों को करनेवाले (मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति), **ये च**=और जो **गन्धर्वाप्सरसः**=(गां धारयन्ति, अप्सु—कर्मसु सरन्ति) ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले यज्ञशील लोग हैं, **ते सर्वे**=वे सब **त्वा गोप्स्यन्ति**=हे वेदधेनो! तेरा रक्षण करेंगे। वस्तुतः वेदज्ञान को अपनाने से ही वे 'देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व व अप्सरस्' बनते हैं। **सा**=वह तू **अतिरात्रम्**=(रा दाने) अतिशयेन दानशील पुरुष को **अतिद्रव**=शीघ्रता से प्राप्त हो। दानशील और अतएव विलास में न फँसे हुए व्यक्ति को यह वेदवाणी प्राप्त होती है।

भावार्थ—वेदवाणी के रक्षक 'देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व व अप्सरस्' हैं। यह दानशील—विषयों में अनासक्त पुरुष को प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शतौदना के दान से सर्वलोकाप्ति

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम्॥ १०॥

१. **यः**=जो **शतौदनाम्**=शतवर्षपर्यन्त जीवन को आनन्द से सिक्त करनेवाली इस वेदवाणी को **ददाति**=देता है, **सः**=वह **अन्तरिक्षं दिवं भूमिम्**=अन्तरिक्ष, द्युलोक व पृथिवी को, **आदित्यान्**=आदित्यों को **मरुतः दिशः**=वायु व दिशाओं को और संक्षेप में **सर्वान् लोकान्**=सब लोकों को **आप्नोति**=प्राप्त करता है, अर्थात् वेदवाणी का आलोचन व परिपाक करने के अनन्तर जो इस वेदवाणी को औरों के लिए देनेवाला बनता है, वह सब लोकों को अपने अनुकूल करनेवाला होता है।

भावार्थ—वेदज्ञान में अपने को परिपक्व करके इसका देनेवाला—औरों के लिए इसे प्राप्त करानेवाला सब लोकों को अपना पाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

घृतं प्रोक्षन्ती

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान्गमिष्यति।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने॥ ११॥

१. **घृतं प्रोक्षन्ती**=शतवर्षपर्यन्त हमारे जीवनों को आनन्दसिक्त करनेवाली यह वेदवाणी हमारे जीवनों में (घृ क्षरणदीप्त्योः) दीप्ति का सेचन करती है, **सुभगा**=यह उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करानेवाली **देवी**=प्रकाशमयी-काम-क्रोध को जीतने की कामनावाली वेदवाणी **देवान् गमिष्यति**=देववृत्ति के पुरुषों को प्राप्त होगी। काम-क्रोध को परास्त करनेवाले पुरुष ही इसे प्राप्त

करने के अधिकारी होते हैं। २. हे **शतौदने**=आजीवन आनन्दित करनेवाली **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदवाणि! **पक्तारं मा हिंसीः**=तेरा परिपाक करनेवाले व्यक्तियों को मत हिंसित कर—तेरा पाक करनेवाले व्यक्ति हिंसित न हों (वेद एव हतो हन्ति)। यह वाणी अघ्न्या है—हम इसका हनन न करेंगे तो यह भी हमें हिंसित होने से बचाएगी। हे शतौदने! तू **दिवं प्रेहि**=प्रकाश व आनन्द (द्युति=मोद) को प्राप्त कर—तू आनन्द को प्राप्त करानेवाली हो।

भावार्थ—वेदवाणी प्रकाशमयी है। यह हमारे जीवनों को ज्ञानसिक्त करती है, सौभाग्यसम्पन्न बनाती है। यह देववृत्ति के पुरुषों को प्राप्त होती है। जो भी अपने में इसका परिपाक करते हैं, उनका हिंसन न होने देती हुई यह उन्हें ज्योति व आनन्द प्राप्त कराती है

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

क्षीर, सर्पि, मधु

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १२॥

१. **ये देवाः**=जो देव **दिविषदः**=द्युलोक में आसीन हैं, **ये च अन्तरिक्षसदः**=और जो अन्तरिक्ष में स्थित हैं, **ये च इमे**=और जो ये **भूम्याम् अधि**=इस पृथिवी पर हैं (ये देवा दिव्येकादश स्थ, ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ, ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ—अथर्व० १९।२७।११-१३) **तेभ्यः**=उनके लिए **त्वम्**=तू **सर्वदा**=सदा **क्षीरं सर्पिः अथो मधु**=दूध, घी व शहद को **धुक्ष्व**=प्रपूरित कर। हमारा मस्तिष्क ही द्युलोक है, हृदय अन्तरिक्षलोक है तथा शरीर पृथिवीलोक है। बाहर के सब देव शरीर में आकर स्थित हुए हैं '**सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते**'। इन सब देवों के लिए यह वेदवाणी क्षीर, सर्पि व मधु के प्रयोग का उपदेश करती है। इनका प्रयोग इन सब देवों को सशक्त बनाये रखता है।

भावार्थ—'पयः पशूनां रसमोषधीनाम्' इस वेदनिर्देश के अनुसार दूध व रस आदि का ही प्रयोग शरीरस्थ सब देवों (इन्द्रियों) को सशक्त बनाये रखता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आमिक्षा, क्षीर, सर्पि, मधु

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १३॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १४॥
यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत्सहकण्ठिका।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १५॥
यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १६॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥ १७॥

१. हे वेदधेनो! **यत् ते शिरः**=जो तेरा सिर है, **यत् ते मुखम्**=जो तेरा मुख है, **यौ कर्णौ**=जो कान हैं, **ये च ते हनू**=और जो तेरे जबड़े हैं। इसी प्रकार **यौ ते ओष्ठौ**=जो तेरे ओष्ठ हैं, **ये**

नासिके=जो नासाछिद्र हैं, **ये शृङ्गे**=जो सींग हैं, **ये च ते अक्षिणी**=जो तेरी आँखें हैं। **यत् ते क्लोमा**=जो तेरा फेफड़ा है **यत् हृदयम्**=जो हृदय है, **सहकण्ठिका पुरीतत्**=कण्ठ के साथ मल की बड़ी आँत है, **यत् ते यकृत्**=जो तेरा कलेजा है, **ये मतस्ने**=जो गुर्दे हैं, **यत् आन्त्रम्**=जो आँत है, **याः च ते गुदा**=और जो तेरी मलत्याग करनेवाली नाडियाँ हैं। **यः ते प्लाशिः**=जो तेरी अन्न की आधारभूत आँत है, **यः वनिष्ठुः**=जो अन्तःरक्त को बाँटनेवाली आँत है, **यौ कुक्षी**=जो कुक्षिप्रदेश हैं, **यत् च ते चर्म**=और जो तेरी चमड़ी है, २. ये सब-के-सब अवयव अर्थात् भिन्न-भिन्न लोक-लोकान्तरों व पदार्थों का ज्ञान **दात्रे**=तेरे प्रति अपने को देनेवाले के लिए (दा दाने) वासनाओं का विनाश करनेवाले के लिए (दाप् लवने) और इसप्रकार अपने जीवन को शुद्ध बनानेवाले के लिए (दैप् शोधने) **आमिक्षाम्**=(तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवी आमिक्षा भवति) गर्म दूध में दही के मिश्रण से उत्पन्न पदार्थ को **क्षीरः सर्पिः अथो मधु**=दूध, घृत व शहद को **दुहताम्**=दूहें—प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—वेदज्ञान हमारे लिए 'आमिक्षा-सर्पि, क्षीर व मधु' को प्राप्त कराता है, अर्थात् हमें इनके प्रयोग के लिए प्रेरित करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदज्ञान व सात्त्विक अन्न

यत्ते॑ म॒ज्जा यद॒स्थि॒ यन्मां॒सं यच्च॒ लोहि॑तम्।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ १८॥
यौ ते॑ बा॒हू ये दो॒षणी॒ यावंसौ॒ या च॑ ते क॒कुत्।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ १९॥
यास्ते॑ ग्री॒वा ये स्क॒न्धा याः पृ॒ष्टीर्याश्च॒ पर्श॑वः।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ २०॥
यौ त॑ ऊ॒रू अ॑ष्ठी॒वन्तौ॒ ये श्रो॑णी॒ या च॑ ते भ॒सत्।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ २१॥
यत्ते॒ पुच्छं॑ ये ते॒ बाला॒ यदू॒धो॒ ये च॑ ते॒ स्तना॑ः।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ २२॥
यास्ते॒ जङ्घा॒ याः कु॒ष्ठिका॒ क्रुच्छ॑रा॒ ये च॑ ते श॒फाः॥
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ २३॥
यत्ते॒ चर्म॑ शतौद॒ने॒ यानि॒ लोमा॑न्यघ्न्ये।
आ॒मिक्षां॑ दुहतां दा॒त्रे क्षी॒रं स॒र्पिर॑थो॒ मधु॑॥ २४॥

१. **यत् ते मज्जा**=जो तेरी मज्जा (अस्थि की मींग) है, **यत् अस्थि**=जो हड्डी है, **यत् मांसम्**=जो मांस है **यत् च लोहितम्**=और जो रुधिर है। **यौ ते बाहू**=जो तेरी भुजाएँ हैं, **ये दोषणी**=जो भुजा के उपरले भाग हैं, **यौ अंसौ**=जो कन्धे है, **या च ते ककुत्**=और जो तेरा कुहान है। **याः ते ग्रीवाः**=जो तेरी गर्दन की हड्डियाँ हैं, **ये स्कन्धाः**=जो तेरे कन्धों की हड्डियाँ हैं, **याः पृष्टीः**=जो पीठ की हड्डियाँ हैं, **याः च पशर्वः**=और जो पसलियाँ हैं। **यौ ते उरू**=जो तेरी जाँघे हैं, **अष्ठीवन्तौ**=जो घुटने हैं, **ये श्रोणी**=जो कूल्हे हैं, **या च ते भसत्**=जो तेरा पेडू है, **यत् ते पुच्छम्**=जो तेरी पूँछ है, **ये ते बालाः**=जो तेरे बाल हैं, **यत् ऊधः**=जो तेरा दुग्धाशय

है, **ये च ते स्तनाः**=और जो तेरे स्तन हैं। **याः ते जंघाः**=जो तेरी जाँघें है, **याः कुष्ठिकाः**=जो कुष्ठिकाएँ हैं—खुट्टियाँ हैं (The mouth or openings), छिद्र हैं, **ऋच्छराः**=खुट्टों के ऊपर के भाग (कलाइयाँ) हैं, **ये च ते शफाः**=और जो तेरे खुर हैं। हे **शतौदने**=शतवर्षपर्यन्त हमारे जीवनों को आनन्दसिक्त करनेवाली वेदधेनो! **यत् ते चर्म**=जो तेरा चाम है और हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदधेनो! **यानि लोमानि**=जो तेरे लोम हैं। २. ये सब, अर्थात् सब लोक-लोकान्तरों का ज्ञान **दात्रे**=तेरे प्रति अपने को दे डालनेवाले के लिए **आमिक्षाम्**=श्रीखण्ड को, **क्षीरम्**=दूध को, **सर्पिः**=घृत को **अथो मधु**=और मधु को **दुहताम्**=प्रपूरित करें।

भावार्थ—वेदधेनु के ज्ञानदुग्ध का पान करते हुए हम 'आमिक्षा, क्षीर, सर्पि व मधु' जैसे उत्तम पदार्थों का ही प्रयोग करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**द्व्युष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप्**॥

यज्ञ व स्वर्गलोक

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह॥ २५॥

१. हे शतौदने! **ते क्रोडौ**=तेरे दोनों पार्श्वभाग (गोद) **पुरोडाशौ स्ताम्**=पुरोडाश हों—(The sacrificial oblation made of ground rice, leaving of an oblation) यज्ञिय आहुतियाँ बनें। जो यज्ञिय आहुतियाँ **आज्येन अभिघारितौ**=घृत से सिक्त हैं (Sprinkle over, moisten) हम तेरा अध्ययन करते हुए तेरे द्वारा उपदिष्ट यज्ञों को करनेवाले बनें। प्रातः-सायं अग्निहोत्र करते हुए हुतशेष को ही खानेवाले बनें। '**अग्निहोत्रसमो विधिः**'—प्रातः-सायं यज्ञ करके यज्ञशेष को ही सदा भोजन के रूप में ग्रहण करें। २. हे **देवि**=प्रकाशमयी वेदवाणि! तू **तौ**=उन दोनों पुरोडाशों को **पक्षौ कृत्वा**=पक्ष (पंख) बनाकर **सा**=वह तू **पक्तारम्**=यज्ञिय हवि का परिपाक करनेवाले इस व्यक्ति को **दिवं वह**=प्रकाशमय स्वर्गलोक में प्राप्त करानेवाली बन। मुण्डकोपनिषत् १.२.४-६ में यही भाव इस रूप में दिया गया है कि '**काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वा॥ एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः॥ एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥**' अर्थात् जो अग्नि-जिह्वाओं में यथासमय आहुतियाँ प्राप्त कराता है, उसे ये आहुतियाँ सूर्यरश्मियों द्वारा ब्रह्मलोक में ले-जानेवाली होती हैं।

भावार्थ—प्रातः-सायं यज्ञ में दी जानेवाली आहुतियाँ ही वेदधेनु के दो पार्श्वभाग (गोद) हैं। ये आहुतियाँ ही ज्ञानपरिपक्व यजमान को स्वर्ग में प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**पञ्चपदाबृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भाजगती**॥

एक-एक कण यज्ञार्पित हो

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु॥ २६॥

१. **यः तण्डुलः कणः**=जो चावल का कण **उलूखले**=ऊखल में, **मुसले**=मूसल में **च**=और **यः चर्मणि**=मृगछाला पर (चर्मासन पर), **यः वा शूर्पे**=या जो छाज में है, **वा**=अथवा **यम्**=जिसको **मातरिश्वा**=अन्तरिक्ष में गतिवाले **पवमानः**=पवित्र करनेवाले **वातः**=वायु ने **ममाथ**=मथा है—विलोडित किया (Turn up and down) **तत्**=उसे यह **होता**=(यज्ञाद् भवति

पर्जन्यः, पर्जन्यादन्नसम्भवः) सब अन्नों को पर्जन्यों द्वारा प्राप्त करानेवाला **अग्निः**=यज्ञाग्नि **सुहुतं कृणोतु**=सम्यक् हुत करे।

भावार्थ—हम एक-एक तण्डुल-कण (धान्य-कण) को यज्ञ के लिए अर्पित करें। सदा यज्ञशेष खानेवाले ही बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**शतौदना**॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिजागताऽनुष्टुब्गर्भाशक्वरी**॥

'दिवा-मधुर-दीप्त' जीवन

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ २७॥

१. **ब्रह्मणां हस्तेषु**=ज्ञानियों के हाथों में **पृथक्**=अलग-अलग स्थित इन **देवीः**=प्रकाशमयी, **मधुमतीः**=जीवन को अत्यन्त मधुर बनानेवाली **घृतश्चुतः**=ज्ञानदीप्ति को हममें सिक्त करनेवाली **अपः**=ज्ञानजल की धाराओं को **प्रसादयामि**=मैं अपने में प्रकर्षेण स्थापित करता हूँ। मैं ज्ञानियों से इन ज्ञानों को प्राप्त करता हूँ। २. **यत् कामः**=जिस कामनावाला **अहम्**=मैं, हे ज्ञानजलो! **वः**=आपको **इदम्**=(इदानीम्) अब **अभिषिञ्चामि**=सिक्त करता हूँ, **तत् मे सर्वं संपद्यताम्**=वह मेरी सब कामनाएँ सिद्ध हों। **वयम्**=हम सब **रयीणां पतयः स्याम**=धनों के स्वामी बनें, कभी धनों के दास न बन जाएँ। हमारे जीवन में धन साधनरूप से हो—न कि साध्यरूप से।

भावार्थ—हम ज्ञानियों से ज्ञानजलों को अपने में स्थापित करने का प्रयत्न करें। ये ज्ञानजल हमारे जीवनों को दिव्य, मधुर व दीप्त बनाते हैं। हमारी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं और हम धनों के स्वामी बनते हैं, न कि धनों के दास। वेदाध्ययन से योगविभूतियों के स्वामी बनें।

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

वेदधेनु के 'बालों, शफों व रूप' के लिए नमन

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपाऽयाघ्न्ये ते नमः॥ १॥

१. इस सूक्त का ऋषि कश्यप है—पश्यक—द्रष्टा, जो वेदमन्त्रों में दिये गये ज्ञान का दर्शन करता है। 'वशा' इस सूक्त का देवता है—गौ, वेदधेनु। यह वेदधेनु हमारे लिए वाञ्छनीय (वश् wish) ज्ञान प्राप्त कराती है। हे वेदधेनो! **जायमानायै**=प्रभु से प्रादुर्भूत होती हुई **ते**=तेरे लिए **नमः**=हम नमस्कार करते हैं। **उत**=और **जातायै**=अग्नि आदि ऋषियों के हृदय में प्रादुर्भूत हुई-हुई **ते नमः**=तेरे लिए हम नमस्कार करते हैं। 'यह वेदज्ञान प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से उच्चरित होता है '**तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्**'। इस वेदज्ञान को अग्नि आदि ऋषि सुनते हैं। 'पूर्वे चत्वारः' सबसे प्रथम के चार व्यक्तियों के हृदयों में प्रभु द्वारा यह स्थापित होता है। २. हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये—कभी हनन न करने योग्य प्रतिदिन स्वाध्याय के योग्य वेदधेनो! **ते**=तेरे **बालेभ्यः**=बालों के लिए **शफेभ्यः**=शफों (Hoofs) के लिए और **रूपाय**=रूप के लिए **नमः**=हम नमस्कार करते हैं। भिन्न-भिन्न पदार्थों का ज्ञान ही इस वेदधेनु के भिन्न-भिन्न अङ्गों के रूप में चित्रित हुआ है। ओषधि-वनस्पतियों का ज्ञान ही इसके बाल हैं, 'धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' का ज्ञान ही इसके चार शफ हैं (शान्ति देनेवाले हैं, शम्+स्फाय्), 'अग्नि' का ज्ञान ही इसका रूप है।

भावार्थ—सृष्टि के आरम्भ में जायमाना व जाता इस वेदवाणी के लिए हम आदर का

भाव धारण करते हैं। भिन्न-भिन्न पदार्थों का ज्ञान ही इस वेदधेनु के भिन्न-भिन्न अङ्ग हैं—उन सब अङ्गों के लिए हम नमन करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदज्ञान व आत्मज्ञान

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात्॥ २॥

१. **यः**=जो **सप्त**=सात **प्रवतः**=(प्रवतः गतिकर्मा—नि० २.१४) गति करनेवाली कर्मेन्द्रियों को (दो हाथ, दो पैर, पायु, उपस्थ, उदर), **विद्यात्**=जाने तथा **सप्त परावतः**=सात (परावत इति दूरनामसु पठितम्—नि० ३।२६) दूर-दूर के विषयों का ज्ञान देनेवाली ज्ञानेन्द्रियों को (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) **विद्यात्**=जाने। इसी प्रकार **यः**=जो **यज्ञस्य**=(पुरुषो वाव यज्ञः) यज्ञरूप पुरुष के **शिरः विद्यात्**=उत्तमांगभूत मस्तिष्क को जाने, **सः**=वह **वशां प्रतिगृह्णीयात्**=इस वेदवाणीरूप गौ का ग्रहण करे।

भावार्थ—वेदवाणीरूप गौ का ग्रहण तो उसी ने किया जिसने कि 'कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों व मस्तिष्क' को समझा। वेदवाणी से उन सब कर्मों का उपदेश दिया जाता है, जिन्हें कर्मेन्द्रियों को करना है; इससे वह सब ज्ञान दिया जाता है जोकि मस्तिष्क व ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करना है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विचक्षण सोम

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम्॥ ३॥

१. **अहम्**=मैं **अस्याम्**=इस वेदवाणी में **सप्त**=सात **प्रवतः**=गति करनेवाली इन कर्मेन्द्रियों को **वेद**=जान पाता हूँ, **सप्त**=सात **परावतः**=दूर-दूर के पदार्थों का ज्ञान देनेवाली ज्ञानेन्द्रियों को **वेद**=जान पाता हूँ। **यज्ञस्य**=यज्ञरूप पुरुष के **शिरः**=मस्तिष्क को भी **अहं वेद**=मैं जान पाता हूँ **च**=तथा **विचक्षणम्**=उस विशिष्ट द्रष्टा—सर्वद्रष्टा—**सोमम्**=प्रेरक प्रभु को मैं इस वेदवाणी से जान पाता हूँ। वस्तुतः सारे वेद अन्ततः उस प्रभु का ही तो प्रतिपादन करते हैं 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।'

भावार्थ—वेदवाणी में कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मस्तिष्क व सर्वद्रष्टा प्रेरक प्रभु' का प्रतिपादन है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सहस्त्रधारा वशा

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्त्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि॥ ४॥

१. **यया**=जिस वेदवाणी से **द्यौः** (गुपितः)=द्युलोक अपने में सुरक्षित किया गया है, **यया पृथिवी**=जिससे यह पृथिवीलोक अपने में सुरक्षित हुआ है, **यया**=जिस वेदवाणी से **इमाः आपः**=यह व्यापक अन्तरिक्षलोक **गुपिताः**=सुरक्षित किया गया है। उस **सहस्त्रधाराम्**=हजारों ज्ञानों का अपने में धारण करनेवाली **वशाम्**=वेदधेनु का **ब्रह्मणा**=ज्ञान के हेतु से **आवदामसि**=हम अच्छी प्रकार से उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—यह वेदवाणी हमारे लिए 'द्युलोक, पृथिवीलोक व अन्तरिक्षलोक'—इन तीनों

लोकों का ज्ञान देती है। सहस्त्रों ज्ञानों द्वारा हमारा धारण करनेवाली इस वेदवाणी का हम ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से उच्चारण करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिजागतानुष्टुभं स्कन्धोग्रीवीबृहती** ॥

कंसाः, दोग्धार, गोप्तारः

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥

१. **ये देवाः**=जो देववृत्ति के पुरुष हैं, वे **शतं**=शतवर्षपर्यन्त, अर्थात् आजीवन **अस्याः**=इस वेदधेनु (वाणी) के **कंसाः**=(कम्+स) कामना करनेवाले बनते हैं, **शतं दोग्धारः**=वे शतवर्षपर्यन्त इसका दोहन करनेवाले होते हैं—वे इससे ज्ञानदुग्ध प्राप्त करते हैं, **शतं गोप्तारः**=आजीवन वे इसका रक्षण करते हैं। वे (अस्याः) **अधिपृष्ठे**=इसके पृष्ठ पर स्थित होते हैं—यह वेदधेनु इनका आधार बनती है। जो देव **तस्यां प्राणन्ति**=उसमें ही प्राणों को धारण करते हैं, **ते**=वे देव **वशाम्**=इस वेदधेनु को **एकधा विदुः**=एक प्रकार से ही जानते हैं—उनका इसके विषय में एक ही अनुभव होता है कि यह वेदधेनु कल्याणकर ज्ञानदुग्ध ही देनेवाली है। इसके अनुसार आचरण करने से कल्याण-ही-कल्याण है।

भावार्थ—हम आजीवन इस वेदधेनु की कामना करें, इसके ज्ञानदुग्ध का दोहन करें, इसके रक्षक बनें। यही हमारा आधार हो, यही हमारा जीवन हो। हम सदा इसे कल्याण-ही-कल्याण करनेवाली पाएँगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

यज्ञपदी-इराक्षीरा

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

१. **वशा**=यह वेदधेनु **यज्ञपदी**=यज्ञों की ओर गतिवाली है—यज्ञों का प्रकाश करती हुई हमें उन यज्ञों के लिए प्रेरित करती है। **इराक्षीरा**=यह अन्न व क्षीरवाली है—अन्न और क्षीर प्राप्त कराती है। **स्वधाप्राणा**=आत्मधारण शक्ति से प्राणित होनेवाली है—यह अपने अपनानेवाले को स्वतन्त्र (अपराश्रित) बनाती है। **महीलुका**=(रुचा) महनीय दीप्ति-(प्रकाश)-वाली है। २. यह **वशा**=चाहने योग्य वेदधेनु **पर्जन्यपत्नी**=मेघों की पत्नी है, अर्थात् जिस राष्ट्र में इस वेदधेनु का उचित मान रहता है, इसका जहाँ खूब ही स्वाध्याय होता है, वहाँ वृष्टि बड़ी ठीक होती है (न वर्ष मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति)। यह वशा **ब्रह्मणा**=ज्ञान के हेतु से **देवान् अपि एति**=देववृत्ति के व्यक्तियों को प्राप्त होती है। जितना-जितना हम देववृत्ति के बनेंगे, उतना-उतना ही इस वशा के प्रिय होंगे।

भावार्थ—यह वेदज्ञान हमारे जीवनों को 'यज्ञमय, स्वाश्रित व दीप्तिवाला तथा अन्नक्षीरयुक्त' बनाता है। जिस राष्ट्र में इस वशा को अपनाया जाता है, वहाँ वृष्टि ठीक रूप से होती है। देव इसे ज्ञान के हेतु से प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अग्नि+सोम (पर्जन्य, विद्युतः)

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

१. हे **वशे**=वेदधेनो! **त्वा अनु अग्निः प्राविशत्**=तेरे पीछे अग्नि का प्रवेश होता है, इसी प्रकार **सोमः त्वा अनु**=सोम तेरे पीछे प्रवेश करता है, अर्थात् जो भी व्यक्ति वेदवाणी को अपनाता है, उसके जीवन में अग्नितत्त्व की ठीक स्थिति होती है—उसके शरीर में अग्नितत्त्व उचित मात्रा में रहता है तथा यह वेदाध्येता सोम को शरीर में सुरक्षित कर पाता है। इन अग्नि और सोमतत्त्वों के ठीक होने पर ही जीवन 'रसमय, नीरोग व ज्ञानवाला' बनता है। २. हे **भद्रे**=कल्याणकारिणि वेदधेनो! **ते ऊधः**=तेरा यह ज्ञानदुग्धाशय **पर्जन्यः**=परातृप्ति का जनक है—अतिशयित आनन्द देनेवाला है। हे **वशे**=चाहने योग्य वेदधेनो! **ते स्तनाः**=तेरे वे स्तन **विद्युतः**=विशिष्ट दीप्तिवाले हैं। तेरे स्तनों से जो ज्ञानदुग्ध प्राप्त होता है वह हमारे जीवनों को दीप्त बनाता है।

भावार्थ—वेदज्ञान को अपनाने पर मनुष्य अपने जीवन में अग्नि और सोमतत्त्वों का समन्वय कर पाता है। इस वेदधेनु का दिया हुआ ज्ञान हमारी तृप्ति का साधन बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्**॥

राष्ट्रं, अन्नं, क्षीरम्

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे। तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम्॥ ८॥

१. हे **वशे**=वेदधेनो! **त्वम्**=तू **प्रथमाः अपः**=सर्वमुख्य मोक्षसाधक नित्यकर्मों को **धुक्षे**=हममें प्रपूरित करती है। यह वेदवाणी हमारे मानवजन्म के अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' को लक्ष्य में रखती हुई, 'धर्म, अर्थ, काम' का समन्वय करती हुई हमें यही उपदेश करती है कि धर्मपूर्वक धनों का अर्जन करो (अग्ने नय सुपथा राये) तथा इन अर्थों के द्वारा न्याय्य आनन्दों को (कामों को) प्राप्त करो 'इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥' —अ० १४।१।२२। हे **वशे**=कमनीये वेदधेनो! **त्वम्**=तू **उर्वराः**=सर्वसस्याढ्य **अपराः**=अपर (अन्य) लौकिक (अपः) कर्मों का भी उपदेश करती है। जिन कर्मों के द्वारा हमें सब धन-धान्यों को प्राप्त करना है, उनका भी यह वेदवाणी हमें उपदेश करती है 'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व'। २. हे वेदधेनो! तू **तृतीयम्**=तीसरे स्थान में **राष्ट्रं धुक्षे**=राष्ट्र का प्रपूरण करती है। उस राष्ट्र में **अन्नं क्षीरम्**=अन्न और क्षीर को प्रपूरित करनेवाली है। राष्ट्र में तू सात्त्विक खान-पान की कमी नहीं होने देती।

भावार्थ—वेद मोक्षसाधक मुख्य कर्मों का उपदेश देता हुआ, उन लौकिक कर्त्तव्य-कर्मों का भी उपदेश करता है, जिनसे कि हम राष्ट्र को उन्नत बनाते हुए अन्न, क्षीर आदि जीवन के पोषक पदार्थों को प्राप्त कर पाते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आदित्यों का सोमपान

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि। इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वशे॥ ९॥

हे **ऋतावरि**=सत्यज्ञान से परिपूर्ण वेदवाणि! **यत्**=जब **आदित्यैः**=आदित्य ब्रह्मचारियों से **हूयमाना**=पुकारी जाती हुई तू **उपातिष्ठः**=उनके समीप उपस्थित होती है, अर्थात् जब आदित्य ब्रह्मचारी इस वेदज्ञान को प्राप्त करना ही अपना ध्येय बना लेता है, तब **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक प्रभु, हे **वशे**=कमनीय वेदधेनो! **त्वा**=तेरे द्वारा **सहस्रं पात्रान्**=हज़ारों योग्य व्यक्तियों को **सोमं अपाययत्**=सोम का पान कराता है-(सोम A ray of light)-ज्ञान की किरणों को प्राप्त कराता है।

भावार्थ—हम 'आदित्य' बनने का संकल्प करें। प्रभु हमें वेदवाणी के द्वारा प्रकाश की किरणों को प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुपु** ॥

प्राची (पुराची) न कि अनूची

यदनूचीन्द्रमैरात्त्वं ऋषभो ऽह्वयत्। तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो ऽहरद्वशे ॥ १० ॥

१. हमें चाहिए कि जीवन में ज्ञान को सर्वप्रथम स्थान दें। वेदवाणी हमारे जीवनों में पीछे चलनेवाली न हो, अपितु उसका स्थान सर्वप्रथम हो—वह अनूची (अनु अञ्च, पश्चाद् गच्छन्ती) न होकर प्राची (प्र अञ्च) हो। वेदवाणी हमारे पीछे न हो, वह हमारे आगे हो। हे **वशे**=कमनीये वेदधेनो! **यत्**=जब तू **अनूची**=पीछे चलनेवाली होती हुई **इन्द्रम्**=इन इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव को प्राप्त होती है तब **आत्**=शीघ्र ही **ऋषभः**=वे शक्तिशाली प्रभु **त्वा अह्वयत्**=तुझे वापस पुकार लेते हैं। २. **वृत्रहा**=वासना के विनष्ट करनेवाले प्रभु **क्रुद्धः**=तुझे अग्रस्थान न देने के कारण क्रुद्ध हुए-हुए **तस्मात्**=उस व्यक्ति से **ते**=तेरे **पयः**=आप्यायन (वृद्धि) के साधनभूत **क्षीरम्**=ज्ञानदुग्ध को **अहरत्**=हर (carry away) लेते हैं। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम यह वेदज्ञान ही तो दिया, अतः इसका स्थान सर्वप्रमुख होना ही चाहिए।

भावार्थ—जो व्यक्ति जीवन में ज्ञान को सर्वप्रथम स्थान नहीं देता, वह प्रभु का प्रिय नहीं बनता। क्रुद्ध हुए-हुए प्रभु उसके, शक्तियों को आप्यायित करनेवाले, ज्ञान को हर लेते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

क्रुद्धः Vs नाकः

यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे। इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

१. हे **वशे**=कमनीये वेदधेनो! वह **धनपतिः**=ज्ञानधन के स्वामी प्रभु **क्रुद्धः**=ज्ञान को सर्वप्रथम स्थान न देने से क्रुद्ध हुए-हुए **यत्**=चूँकि **ते क्षीरं आ अहरत्**=तेरे ज्ञानदुग्ध को हमसे हर लेते हैं **तत्**=अतः **अद्य**=आज (अब) **नाकः**=आनन्दमय स्वभाववाला जीव **इदम्**=इस वेदज्ञान को **त्रिषु पात्रेषु रक्षति**=तीनों पात्रों में रक्षित करता है—'ज्ञानेन्द्रियाँ, मन व बुद्धि' ही इस ज्ञान के तीन पात्र हैं। यह इन तीनों को ज्ञानप्राप्ति में लगाने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—ज्ञानप्राप्ति में न लगकर हम प्रभु के क्रोध के पात्र बनते हैं, अतः हम 'ज्ञानेन्द्रियों, मन व बुद्धि' के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करें।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अथर्वा—दीक्षितः

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्य ऽहरद्वशा। अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्ते हिरण्यये ॥ १२ ॥

१. **यत्र**=जहाँ **दीक्षितः**=व्रत ग्रहण किया हुआ **अथर्वा**=स्थिरवृत्ति का ब्रह्मचारी **हिरण्यये**=चमकते हुए—मल से रहित **बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **आस्ते**=स्थित होता है, वहाँ **वशा देवी**=कमनीया प्रकाशमयी वेदधेनु **त्रिषु पात्रेषु**=ज्ञानेन्द्रियों, मन व बुद्धि में **तं सोमम्**=उस प्रकाश की किरण को **आ अहरत्**=सर्वथा प्राप्त कराती है।

भावार्थ—जब हम व्रतमय जीवनवाले (दीक्षित) स्थिरवृत्तिवाले (अथर्वा) व वासनाशून्य हृदयवाले (बर्हि) बनेंगे तब इस कमनीया वेदधेनु से ज्ञानदुग्ध को प्राप्त करेंगे। इस धेनु का ताज़ा दूध ही 'सोम' है। यह हमारे जीवनों को प्रकाश की किरणों से व्याप्त करनेवाला है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सं सोमेन

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता। वशा समुद्रमध्यष्ठाद्धन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

१. **हि**=निश्चय से **वशा**=यह कमनीया वेदधेनु **सोमेन**=सोम के साथ **सम् आगत**=संगत होती है। जो भी व्यक्ति पृथिवी से उत्पन्न सौम्य भोजनों को करता हुआ शरीर में सोम (वीर्य) का रक्षण करता है, यह वेदवाणी उसे ही प्राप्त होती है। **उ**=और **सर्वेण पद्वता**=सब गतिशील (पद गतौ) व्यक्तियों से इसका **सम्**=मेल होता है। यह **वशा**=कमनीया वेदधेनु **समुद्रं अध्यष्ठात्**=(स मुद्) प्रसादयुक्त मनवाले व्यक्ति में अधिष्ठित होती है। **गन्धर्वैः कलिभिः सह**=ज्ञान की वाणियों को धारण करनेवाले (कला अस्य अस्तीति कली) कला-सम्पन्न पुरुषों के साथ यह वेदधेनु निवास करती है।

भावार्थ—हम वेदज्ञान को प्राप्त करने के लिए सौम्य भोजन करनेवाले बनें, 'गतिशील-प्रसन्न मनवाले, ज्ञानरुचि व कलावित्' हों।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सं वातेन

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः। वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती॥ १४॥

१. **ऋचः**=विज्ञानों को तथा **सामानि**=प्रभुस्तोत्रों को **बिभ्रती**=धारण करती हुई यह **वशा**=वेदवाणी **समुद्रे**=प्रसादयुक्त मनवाले पुरुष में **प्रानृत्यत्**=प्रकर्षेण नृत्य करती है, अर्थात् इस 'समुद्र' को ही प्राप्त होती है। **हि**=निश्चय से यह **वातेन**=हृदयान्तरिक्ष में (वा गतौ) गति के संकल्पवाले पुरुष के साथ **सम् अगत**=संगत होती है, **उ**=और **सर्वैः पतत्रिभिः सम्**=सब ऊँची उड़ान लेनेवालों के साथ—ऊँचे उद्देश्यवालों के साथ यह संगत होती है।

भावार्थ—वेदज्ञान को प्राप्त करने के लिए हम निर्मल (प्रसन्न) मनवाले हों, हृदय में कर्मसंकल्प से युक्त हों, जीवन में किसी ऊँचे लक्ष्य से प्रेरित होकर चलें।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सं सूर्येण

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा। वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती॥ १५॥

१. यह **वशा**=कमनीया वेदधेनु **हि**=निश्चय से **सूर्येण**=(सरति) निरन्तर गतिवाले, अतएव चमकनेवाले पुरुष के साथ **सम् अगत**=संगत होती है **उ**=और यह वशा **सर्वेण चक्षुषा**=सब देखनेवालों के साथ **सम्**=संगत होती है—आँख बन्द करके चलनेवालों को यह वेदज्ञान नहीं प्राप्त होता। २. **भद्रा ज्योतींषि**=कल्याणकर ज्ञानज्योतियाँ को **बिभ्रती**=धारण करती हुई यह वशा **स-मुद्रम्**=प्रसन्न मनवाले पुरुष को **अति अख्यत्**=अतिशयेन देखती है—उसका यह पालन करती है (Look after)।

भावार्थ—वेदवाणी को प्राप्त करने के लिए हम सूर्य की भाँति निरन्तर गतिवाले व संसार में आँख खोलकर चलनेवाले बनें। प्रसन्न मनवाले होकर हम वेदवाणी की भद्र ज्योतियों को प्राप्त करने के पात्र हों।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अश्वः समुद्रः भूत्वा

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि। अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कन्दद्वशे त्वा॥ १६॥

१. हे **ऋतावरि**=ऋत (सत्य) ज्ञानोंवाली **वशे**=कमनीय वेदवाणि! **यत्**=चूँकि तू **हिरण्येन**=हितरमणीय ज्ञानज्योति से **अभीवृता**=समन्तात् आच्छादित हुई-हुई **अतिष्ठः**=स्थित हुई है, अतः **समुद्रः**=सदा प्रसन्न मनवाला यह व्यक्ति **अश्वः भूत्वा**=(अश् व्याप्तौ) कर्मशील होकर

त्वा अधि अस्कन्दत्=(स्कन्द् गतौ) तुझे आधिक्येन प्राप्त करता है।

भावार्थ—वेदवाणी सब सत्यज्ञानों का प्रकाश करती है। प्रसन्न मन से कर्मों में व्यस्त रहनेवाला व्यक्ति इसे प्राप्त करता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वशा—देष्ट्री—स्वधा

तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये॥ १७॥

१. **यत्र**=जहाँ **दीक्षितः**=व्रतों को ग्रहण किये हुए **अथर्वा**=स्थिरवृत्तिवाला (न थर्व) आत्मालोचनशील (अथ अर्वाङ्) पुरुष **हिरण्यये**=ज्योतिर्मय—निर्मल—ईर्ष्या-द्वेषादि मलों से रहित—**बर्हिषि**=वासनाशून्य हृदय में **आस्त**=स्थित होता है, **तत्**=तो वहाँ **भद्राः**=कल्याण करनेवाली ये तीन बातें **सम् अगच्छन्त**=संगत होती हैं—एक तो **वशा**=वेदधेनु—यह उस अथर्वा को ज्ञानदुग्ध का पान कराती है, दूसरी **देष्ट्री**=प्रभु की प्रेरणा—वह उसके लिए कर्त्तव्य-कर्मों का निर्देश करती है, **अथो**=और **स्वधा**=आत्मधारणशक्ति—यह कभी पराश्रित नहीं होता और परिणामतः सुखी रहता है (सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्)।

भावार्थ—हम स्थिरवृत्तिवाले (अथर्व) व व्रतमय जीवनवाले बनें। हमारा हृदय वासनाशून्य हो। ऐसे हृदय में स्थित होने पर प्रभु की वेदधेनु हमें ज्ञानदुग्ध का पान कराती है, प्रभु की प्रेरणा सुन पड़ती है तथा हम आत्मधारणशक्तिवाले बनते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

राजन्य, स्वधा, यज्ञ, चित्त

वशा माता राजन्य ऽस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत॥ १८॥

१. **वशा**=यह कमनीया वेदधेनु ही **राजन्यस्य माता**=प्रजा का रञ्जन करनेवाले 'राजन्य' (क्षत्रिय) की माता है—वेदज्ञान ही उसे राजन्य बनाता है। मनु लिखते है कि '**सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति**'। हे **स्वधे**=आत्मधारणशक्ते! यह **वशा**=वेदधेनु ही **तव माता**=तेरी माता है। वेद ही तुझे आत्मधारणशक्तिवाला व अपराश्रित बनाएगा। २. **वशायाः**=इस वेदधेनु का **आयुधम्**=शत्रुनिवारक शस्त्रसमूह **यज्ञे**=यज्ञ में निहित है। यज्ञों के द्वारा ही वेद हमें शत्रुओं के आक्रमण से रक्षित होने का उपदेश करता है—यज्ञों में प्रवृत्त व्यक्ति 'काम, क्रोध, लोभ' आदि का शिकार नहीं होता। **ततः**=उस वशा से ही 'काम, क्रोध, लोभ' से अनाक्रान्त होने पर **चित्तम् अजायत**=सब संज्ञान उत्पन्न होता है(चिती संज्ञाने)।

भावार्थ—वेदधेनु एक उत्तम क्षत्रिय को, आत्मधारणशक्ति को, यज्ञरूप आयुध को तथा संज्ञान को आविर्भूत करती है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऊर्ध्वरेता बनना

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताऽजायत॥ १९॥

१. **ब्रह्मणः ककुदात् अधि**=(अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी) ज्ञान के शिखर के हेतु से **बिन्दुः**=वीर्यकण **ऊर्ध्वः उदचरत्**=शरीर में ऊर्ध्व गतिवाला हुआ, अर्थात् शरीर में जब शक्ति

की ऊर्ध्वगति होती है, तभी यह शरीर में सुरक्षित हुई-हुई ज्ञानाग्नि का ईंधन बनती है और हम ज्ञान के शिखर पर पहुँचने के योग्य बनते हैं। २. हे **वशे**=कमनीये वेदधेनो! **ततः**=तभी—वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर ही **त्वं जज्ञिषे**=तू प्रादुर्भूत होती है—तेरे प्रकाश को यह ऊर्ध्वरेता पुरुष ही प्राप्त करता है। **ततः**=तभी—वीर्य की ऊर्ध्वगति होने पर ही **होता**=वह सब साधनों को देनेवाला प्रभु **अजायत**=प्रादुर्भूत होता है—तभी हम हृदय में प्रभु का प्रकाश पाते हैं।

भावार्थ—ज्ञान के शिखर पर पहुँचने के लिए, वेदवाणी के व प्रभु के प्रकाश को पाने के लिए आवश्यक है कि हम शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगतिवाले बनें।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदधेनु के भिन्न-भिन्न अंग

आस्त्रस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे।
पाजस्या ज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव॥ २०॥
ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अन्ना उदरादधि वीरुधः॥ २१॥

१. हे **वशे**=वेदधेनो! **ते आस्त्रः**=तेरे मुख से **गाथाः अभवन्**=गायन योग्य स्तोत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। **उष्णिहाभ्यः**=ग्रीवा की नाड़ियो से **बलम्**=बल का प्रादुर्भाव हुआ। **पाजस्यात्**=तेरे उदर से **यज्ञः जज्ञे**=यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ। **तव स्तनेभ्यः**=तेरे स्तनों से **रश्मयः**=रश्मियों—किरणों का प्रादुर्भाव हुआ। २. हे **वशे**=वेदधेनो! **तव**=तेरी **ईर्माभ्याम्**=भुजाओं से **च**=तथा **सक्थिभ्याम्**=दोनों जंघाओं से **अयनं जातम्**=दक्षिणायन व उत्तरायण का प्रादुर्भाव हुआ। **आन्त्रेभ्यः**=तेरी आँतों से **अन्नाः जज्ञिरे**=खाने योग्य पदार्थ प्रादुर्भूत हुए, तथा **उदरात् अधि**=उदर से **वीरुधः**=प्रतानिनी (फैलनेवाली) बेलों का प्रादुर्भाव हुआ।

भावार्थ—वेदधेनु के भिन्न-भिन्न अङ्गों से उन-उन वस्तुओं के प्रादुर्भाव का अभिप्राय इतना ही है कि वेदधेनु इन सब पदार्थों के ज्ञानरूप दुग्ध को देनेवाली है—वेद से हमें इन पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स हि नेत्रमवेत् तव

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे। ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत्स हि नेत्रमवेत्तव॥ २२॥

१. सृष्टि के प्रारम्भ में यह वेदज्ञान प्रभु से प्रादुर्भूत होता है तथा प्रलय के आने पर प्रभु में ही चला जाता है। हे **वशे**=वेदधेनो! **यत्**=जो तू प्रलय के समय **वरुणस्य उदरम्**=उस पापनिवारक प्रभु के उदर में **अनुप्राविशथाः**=अनुप्रविष्ट हो जाती है, **त्वा**=उस तुझको **ब्रह्मा**=सर्वोत्तम सात्त्विक स्थितिवाला पुरुष ('ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव०') **ततः**=वहाँ से **उद् अह्वयत्**=ऊपर पुकारता है। यह ब्रह्मा अग्नि के द्वारा ऋग्वेद का, वायु के द्वारा यजुर्वेद का, आदित्य के द्वारा सामवेद का, अङ्गिरा के द्वारा अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त करता है। **सः**=वह ब्रह्मा **हि**=निश्चय से **तव नेत्रम्**=तेरे नेत्र को—प्रणयन, नेतृत्व को, **अवेत्**=जानता है। ब्रह्मा तुझसे मार्गदर्शन प्राप्त करता है और औरों के लिए तुझे प्राप्त कराता है।

भावार्थ—यह वेदवाणी प्रलयकाल में प्रभु में प्रविष्ट होकर रहती है। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा इसका आह्वान करता है तथा 'अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' द्वारा इसका दोहन करके वह औरों के लिए इसे प्राप्त करानेवाला बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥

असूसूः—वशा

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्व ऽः।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्य ऽ स्या बन्धुः॥ २३॥

१. वेदवाणी असुओं को—प्राणों को जन्म देने से 'असूसू' कही गई है। इस **असूस्वः**=प्राणशक्ति को जन्म देनेवाली वेदधेनु के **जायमानात् गर्भात्**=प्रादुर्भूत होते हुए गर्भ से **सर्वे अवेपन्त**=काम, क्रोध आदि सब शत्रु काँप उठते हैं। वेदज्ञान से हमें प्राणशक्ति प्राप्त होती है, इस प्राणशक्ति से सम्पन्न होकर हम काम, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त करते हैं। २. **ससूव हि**=जब इस वेदधेनु ने निश्चय से प्राणशक्ति को जन्म दिया तब **ताम्**=उस वेदधेनु को **आहुः**=कहते हैं कि **वशा इति**=यह सचमुच 'वशा' है। शत्रुओं को वशीभूत करनेवाली है। इसका आराधक **ब्रह्मभिः क्लृप्तः**=ज्ञान की वाणियों से शक्तिसम्पन्न बनता है (क्लृप् सामर्थ्ये)। **सः**=वह शक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही **अस्याः बन्धुः**=इसे अपने में बाँधनेवाला है।

भावार्थ—जो भी वशा को अपने जीवन में बाँधता है, वह इसके द्वारा शक्तिसम्पन्न बनकर काम, क्रोध आदि को जीत लेता है। यह वशा प्राणशक्ति को जन्म देनेवाली है, इसप्रकार यह सचमुच शत्रुओं को वश में करनेवाली 'वशा' ही है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

वशा—वशी

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी।
तरांसि यज्ञा अभवन्तरसां चक्षुरभवद्वशा॥ २४॥

१. **यः**=जो **अस्याः**=इस वेदधेनु का **एकः इत्**=निश्चय से अद्वितीय **वशी**=वश में करनेवाला होता है वह **एकः**=अकेला ही अपने जीवन में **युधः संसृजति**='काम, क्रोध, लोभ' से युद्ध करनेवाले 'प्रेम, करुणा व त्याग' रूप योद्धाओं को संसृष्ट करता है। जितना-जितना हम वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं, उतना-उतना 'प्रेम, करुणा व त्याग' को विकसित करके, 'काम, क्रोध, लोभ' रूप शत्रुओं को विनष्ट कर पाते हैं। २. इस वशा (वेदधेनु) को वश में करनेवाले वशी के **यज्ञाः**=यज्ञ ही **तरांसि अभवन्**=बल होते हैं। इन **तरसाम्**=यज्ञरूप बलों की **चक्षुः**=प्रकाशिका **वशा अभवत्**=यह वेदधेनु ही होती है। वेद द्वारा उपदिष्ट यज्ञों को करते हुए हम शत्रुओं से अजय्य बन जाते हैं।

भावार्थ—वेदधेनु को अपनानेवाला व्यक्ति अपने जीवन में 'प्रेम, करुणा व त्याग' को उत्पन्न करके 'काम, क्रोध, लोभ' को पराजित करनेवाला बनता है। इस वशी के यज्ञ ही बल होते हैं। इसके लिए इन यज्ञों की प्रकाशिका यह वशा है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञ—ज्ञानसूर्य—ओदन (सुखद भोजन)

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत्।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह॥ २५॥

१. **वशा**=यह कमनीया वेदधेनु **यज्ञं प्रत्यगृह्णात्**=यज्ञ का ग्रहण करती है। जो वशा का ग्रहण करता है, वह यज्ञशील बनता है। **वशा**=यह कमनीया वेदधेनु **सूर्यम् अधारयत्**=हमारे मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञानसूर्य का धारण करती है। **वशायाम् अन्तः**=इस वशा के अन्दर **ब्रह्मणा सह**=ज्ञान

के साथ **ओदनः**=सुख से क्लिन्न करनेवाला भोजन **अविशत्**=प्रविष्ट हुआ है, अर्थात् यह वशा हमें ब्रह्म—ज्ञान तो प्राप्त कराती ही है, साथ ही हमें भोजन प्राप्त करने के योग्य भी बनाती है।

भावार्थ—यदि हम वेदवाणी को अपनाएँगे तो 'यज्ञशील बनेंगे, ज्ञानसूर्य से दीप्त जीवनवाले होंगे, सात्त्विक सुखद अन्नों को प्राप्त करेंगे'।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः** ॥

देव, मनुष्य, असुर, पिता, ऋषि

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः॥ २६॥

१. **वशाम्**=इस कमनीया वेदधेनु को **एव**=ही **अमृतम् आहुः**=अमृत कहते हैं, इससे दिया गया ज्ञान हमारी अमरता का साधन बनता है। **वशाम्**=वशा को ही **मृत्युम्**=आचार्य के रूप में (आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः) **उपासते**=उपासित करते हैं। वास्तविक आचार्य वशा ही है। २. **वशा**=यह वेदधेनु ही **इदं सर्वं अभवत्**=यह सब हो जाती है—**देवाः**=देव **मनुष्याः**=मनुष्य **असुराः**=असुर, **पितरः**=पिता तथा **ऋषयः**=ऋषि। वशा हमें देव—प्रकाशमय दिव्य जीवनवाला बनाती है। यह हमें विचारपूर्वक कर्म करनेवाला मनुष्य (मत्वा कर्माणि सीव्यति) बनाती है। यह हमें प्राणशक्ति सम्पन्न (असून् राति) करती है। हम इसके द्वारा रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त 'पितर' बनते हैं, और वासनाओं को विनष्ट करते हुए हम ऋषि होते हैं (ऋष् to kill)।

भावार्थ—वशा ही अमृत है। यही हमारा आचार्य है, यह हमें 'देव, मनुष्य, असुर, पिता व ऋषि' बनाती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**शङ्कुमत्यनुष्टुप्** ॥

'सर्वपात् अनपस्फुरन्' यज्ञ

य एवं विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात्।
तथा हि यज्ञः सर्वपादुहे दात्रेऽनपस्फुरन्॥ २७॥

१. **यः**=जो **एवं विद्यात्**=इसप्रकार समझ लेता है कि इस वेदवाणी के द्वारा दिया गया ज्ञान हमें अमरता प्राप्त कराता है और यह हमें यज्ञों में प्रेरित करके देववृत्ति का बनाता है, **सः**=वह **वशां प्रतिगृह्णीयात्**=इस वेदधेनु को अवश्य प्राप्त करता ही है। २. **तथा**=वैसा करने पर वेद से यज्ञों की प्रेरणा लेकर जब हम यज्ञशील बनते हैं तब यह **यज्ञः**=यज्ञ **हि**=निश्चय से **सर्वपाद्**=सब चरणोंवाला होता हुआ—विधिपूर्वक किया जाता हुआ—**अनपस्फुरम्**=(स्फुर संचलने) विचलित—विच्छिन्न न होता हुआ **दात्रे**=हवि देनेवाले इस यज्वा के लिए **दुहे**=सब कामनाओं का दोहन करता है। उस यज्वा के लिए यज्ञ कामधुक् होता है।

भावार्थ—वेदवाणी यज्ञों का प्रतिपादन करती है। ये यज्ञ अविच्छिन्नरूप से विधिपूर्वक होते हुए हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋग्, यजुः, साम में यजुः का दुष्पतिग्रहत्व

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा॥ २८॥

१. **वरुणस्य**=पापों का निवारण करनेवाले प्रभु के **आसनि अन्तः**=मुख में **तिस्रः जिह्वाः**=तीन जिह्वाएँ **दीद्यति**=चमकती हैं। **'तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्'**॥ प्रभु गर्जना करते हुए हमारे समीप प्राप्त होते हैं, वे तीन वाणियों का उच्चारण करते हुए आते है। वे वाणियाँ ही 'ऋग्, यजुः व साम' हैं। 'ऋग्' विज्ञान है, 'यजु' कर्म तथा 'साम' उपासना। २. **तासाम्**=उन वाणियों में **या**=जो **मध्ये राजति**=बीच में दीप्त होती है, **सा**=वह यजुः रूप वेदवाणी **दुष्प्रतिग्रहा**=ग्रहण करने में कठिन है। कर्म विज्ञानपूर्वक ही करने होते हैं और उन कर्मों को प्रभु के प्रति अर्पण करने से ही प्रभु का उपासन होता है। इसप्रकार कर्म का महत्त्व स्पष्ट है। यही करने योग्य है, परन्तु है बड़ा कठिन।

भावार्थ—वरुण प्रभु की तीन वाणियाँ है 'ऋग्, यजुः व साम'। इनमें श्रेष्ठतम कर्मरूप मध्य की वाणी कठिन है। कर्म करना सरल नहीं, परन्तु प्रभु का उपासन ज्ञानपूर्वक किये गये कर्मों से ही होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**त्रिपदागायत्री**॥

आपः अमृतं यज्ञः पशवः

चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः। आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम्॥ २९॥

१. **वशायाः**=इस वेदवाणी की **रेतः**=सन्तान (Progeny)—प्रजा—**चतुर्धा अभवत्**=चार प्रकार की होती है। **आपः तुरीयम्**=एक चौथाई तो कर्मों में व्याप्त रहनेवाले नर हैं (आप् व्याप्तौ)—वेदवाणी मनुष्यों को यही प्रेरणा देती है कि **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः'**=कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। **तुरीयम्**=वशा का एक चौथाई रेतस् **अमृतम्**=नीरोगता है। वेद मनुष्य को वाचस्पति बनकर नीरोग बनने का उपदेश देता है। २. **तुरीयम्**=वेद का तृतीय तुरीयांश **यज्ञः**=यज्ञ है। वह सविता देव मनुष्य को इन यज्ञों के लिए ही निरन्तर प्रेरित कर रहा है। **पशवः तुरीयम्**=वेद का चतुर्थ रेतस् पशु है **'तवेमे पञ्च पशवः गौरश्वः पुरुषोऽजावयः'** इस मन्त्र भाग द्वारा गौ, अश्व, अजा, अवि आदि पशुओं को मानव जीवन के साथ जोड़ दिया गया है। **'दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः'** आदि शब्दों द्वारा उत्तम धेनुओं, बैलों व घोड़ों के लिए निर्देश हुआ है।

भावार्थ—वेदवाणी मनुष्य को 'क्रियाशील जीवनवाला, नीरोग, यज्ञशील व उत्तम गौ आदि पशुओंवाला' बनने की प्रेरणा देती है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

साध्याः वसवः द्यौः

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये॥ ३०॥

१. **वशा**=यह वेदधेनु ही **द्यौः**=द्युलोक है, **वशा पृथिवी**=यह वेदधेनु ही पृथिवीलोक है, अर्थात् यह वेदधेनु ही द्युलोक से पृथिवीलोक तक सब पदार्थों का ज्ञान देनेवाली है। **वशा**=यह वेदधेनु ही **विष्णुः**=प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त **प्रजापतिः**=प्रजाओं का रक्षक प्रभु है। यह वेदवाणी प्रत्येक पदार्थ में प्रभु की सत्ता व महिमा का दर्शन कराती है। २. **वशायाः**=इस वेदधेनु के **दुग्धम्**=ज्ञानदुग्ध को वे ही पीते हैं **ये**=जो **साध्याः**=साधना में प्रवृत्त **च**=और **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले हैं। वस्तुतः वशा के दुग्धपान का ही यह परिणाम होता है कि हम साधनामय जीवनवाले व उत्तम निवासवाले बनते हैं। इसके दुग्ध का पान करनेवाला व्यक्ति सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखता है।

भावार्थ—यह कमनीया वेदवाणी हमें सब पदार्थों का ज्ञान देती है—सब पदार्थों में प्रभु की व्याप्ति व महिमा का दर्शन कराती है, इसप्रकार यह हमारे जीवनों को साधनामय व उत्तम निवासवाला करती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**उष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप्** ॥

ब्रध्नस्य विष्टपि

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते॥ ३१॥

१. **वशायाः दुग्धं पीत्वा**=इस वेदधेनु के ज्ञानदुग्ध का पान करके **ये साध्याः**=जो साधनामय जीवनवाले **च**=और **वसवः**=उत्तम निवासवाले बनते हैं, **ते**=वे **वै**=निश्चय से **ब्रध्नस्य विष्टपी**=(ब्रध्न the sun, शिव) सूर्यलोक में व ब्रह्मलोक में **अस्याः**=इस वेदधेनु के **पयः उपासते**=आप्यायित करनेवाले ज्ञानदुग्ध का उपासन करते हैं—ब्रह्म में स्थित होते हैं और ज्ञानमय जीवनवाले बनते हैं।

भावार्थ—इस वेदधेनु के ज्ञानदुग्ध का पान करनेवाला व्यक्ति 'साधनामय जीवनवाला, उत्तम निवासवाला व ब्रह्म में स्थितिवाला (ब्रह्मनिष्ठ)' बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती** ॥

'सोम और घृत' का दोहन

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते।
ये एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिंदिवं दिवः॥ ३२॥

१. **एके**=कई वसु (अपने निवास को उत्तम बनानेवाले व्यक्ति) **एनां सोमं दुह्रे**=इस वेदधेनु से सोम (वीर्य) का दोहन करते हैं। **एके**=कई साध्य (साधनामय जीवनवाले व्यक्ति) **घृतम्**=मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति की उपासना करते हैं। यह वेदवाणी हमें (उत्तम निवासवाला निर्मल व ज्ञानदीप्त जीवनवाला) बनाती है। २. **ये**=जो **एवं विदुषे**=इसप्रकार ज्ञानी पुरुष के लिए—इस बात को (वेदधेनु के दुग्धपान के महत्त्व को) समझनेवालों के लिए **वशां ददुः**=इस वेदधेनु को प्राप्त कराते हैं, **ते**=वे **दिवः**=इस ज्ञान से **त्रिदिवम्**=स्वर्ग को **गताः**=जाते हैं। जिज्ञासु के लिए ज्ञान देनेवाले आचार्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी के अध्ययन से 'सौम्य, निर्मल व ज्ञानदीप्त' बनकर जो जिज्ञासुओं के लिए इस वेदज्ञान को प्राप्त कराते हैं, वे स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋत, ब्रह्म, तप

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते।
ऋतं ह्य स्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः॥ ३३॥

१. **ब्राह्मणेभ्यः**=ब्रह्म-प्राप्ति की कामनावालों के लिए **वशाम्**=इस वेदधेनु को **दत्त्वा**=देकर **सर्वान् लोकान्**=सब लोकों को **समश्नुते**=सम्यक् प्राप्त करता है। ब्रह्मदान से सब उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। २. **अस्याम्**=इस वशा में **हि**=निश्चय से **ऋतम्**=सत्यज्ञान (ठीक-ठीक ज्ञान) **आर्पितम्**=अर्पित हुआ-हुआ है—स्थापित हुआ है, **ब्रह्म अपि**=(बृहि वृद्धौ) हृदय की विशालता भी इसमें स्थापित हुई है, **अथो**=और **तपः**=इसमें तप स्थापित हुआ है। इस वेदधेनु का उपासक शरीर में तपस्वी, हृदय में विशाल अथवा हृदय में ब्रह्म की भावनावाला तथा मस्तिष्क में सत्यज्ञान

से परिपूर्ण बनता है। इस वेदज्ञान को औरों को प्राप्त करानेवाला सर्वोत्तम दानी उत्तम लोकों को क्यों न प्राप्त करेगा?

भावार्थ—ज्ञान-प्राप्ति की कामनावालों के लिए उत्तम ज्ञान प्राप्त कराके हम उत्तम लोकों को प्राप्त करते हैं। यह वेदधेनु अपने ज्ञानदुग्ध से हमें 'सत्यज्ञानवाला, विशाल हृदयवाला व तपस्वी' बनाती है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देव, मनुष्य, भूति

व॒शां दे॒वा उप॑ जीवन्ति व॒शां म॑नु॒ष्या॑ ऽउ॒त।
व॒शेदं सर्वं॑मभव॒द्याव॒त्सूर्यो॑ वि॒पश्य॑ति॥ ३४॥

१. **देवाः**=आसुरभावों पर विजय प्राप्ति की कामनावाले लोग **वशाम् उपजीवन्ति**=इस वेदधेनु पर ही उपजीवित हैं—यही उन्हें आसुरभावों पर विजय प्राप्त कराती है, **उत**=और **मनुष्याः**=मननपूर्वक कर्मों को करनेवाले लोग भी **वशां** (उपजीवन्ति)=इस वेदधेनु पर ही उपजीवित हैं। यह वेदधेनु ही उन्हें सात्त्विकवृत्तिवाला व सोचकर कर्म करनेवाला बनाती है। २. **यावत् सूर्यः विपश्यति**=जहाँ तक सूर्य प्रकाश करता है, अर्थात् **इदं सर्वम्**=इन सब लोकों को **वशा अभवत्**=यह वेदधेनु ही भूतियुक्त करती है।

भावार्थ—वेदज्ञान ही हमें आसुरभावों पर विजयी बनाकर 'देव' बनाता है। यही हमें मननपूर्वक कार्यों को करनेवाला 'मनुष्य' बनाता है और यही हमारे सब लोकों को भूतियुक्त करता है।

॥ इति त्रयोविंशः प्रपाठकः॥

॥ इति दशमं काण्डम्॥